वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक १२ दिसम्बर २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक १२

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

अग्रहायण, सम्वत् २०८१

दिसम्बर, २०२४

अनुक्रमणिका

* हजारों गौरी-माताओं की आवश्यकता है : विवेकानन्द ५३४
* शक्तिरूपिणी मातृरूपिणी श्रीमाँ सारदा (स्वामी पररूपानन्द) ५३७
* सत्यवादी ही नहीं, सत्य में प्रतिष्ठित भी हों (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५४१
* जगद्धात्रीरूपिणी श्रीमाँ सारदा (स्वामी ईशानन्द) ५४३
* (बच्चों का आंगन) भगवद्गीता से मोनू का जीवन सफल हुआ (श्रीमती मिताली सिंह) ५४५
* सामाजिक विकास में मन्दिरों की भूमिका (श्रीमती अनिता शुक्ला) ५४६
* (युवा प्रांगण) जीवन को गौरवशाली बनाने में प्रेरणा की आवश्यकता (स्वामी गुणदानन्द) ५४९
* श्रीमद्भगवद्गीता की प्रत्येक काल में प्रासंगिकता (डॉ.के.डी.शर्मा) ५५१
* मनखे-मनखे एक समान के संदेशक बाबा गुरु घासीदास (संजीव खुदशाह) ५५९
* पंजाबी साहित्यिक परम्परा में 'आदिग्रन्थ' का स्थान (ए.पी.एन.पंकज) ५६१
* (कविता) परमा प्रकृति सारदा देवी (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५५८
* (कविता) जय सर्वेश्वरी मातु सारदे (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') ५६५
* वार्षिक अनुक्रमणिका – २०२४ ५७२

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५३३
पुरखों की थाती ५३३
सम्पादकीय ५३५
प्रश्नोपनिषद् ५५४
रामगीता ५५५
श्रीरामकृष्ण-गीता ५५८
गीतातत्त्व-चिन्तन ५६६
साधुओं के पावन प्रसंग ५६९
समाचार और सूचनाएँ ५७१

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,**
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर श्रीमाँ सारदा देवी की मूर्ति है, जो दक्षिणेश्वर के नहबतखाना में स्थापित है।

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी १८ नवम्बर, २०२४, सोमवार से २६ नवम्बर, २०२४, मंगलवार तक छात्र-छात्राओं के लिये विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जायेगा।

२ जनवरी, २०२५, गुरुवार से ८ जनवरी, २०२५, बुधवार तक वृन्दावन धाम के प्रसिद्ध भागवत प्रवचनकार पं. अखिलेश शास्त्री जी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

१२ जनवरी, २०२५, रविवार को प्रातः ९.३० से १२.३० तक राष्ट्रीय युवा दिवस एवं पुरस्कार-वितरण समारोह का आयोजन किया जायेगा।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

०९	स्वामी प्रेमानन्द
२२	श्रीमाँ सारदा देवी
२४	क्रिसमस ईव
२६	स्वामी शिवानन्द
११,२६	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री पार्थ दुआ, फरीदाबाद (हरियाणा)	१०,०००/-
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	६,५०१/-
समापिका घोष, गुड़गाँव (हरियाणा)	५,०००/-
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	९,००१/-
समापिका घोष, गुड़गाँव (हरियाणा)	५,०००/-
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	७,००१/-
श्री अनिल वासन, जोधपुर (राजस्थान)	५,०००/-

रामकृष्ण मिशन आश्रम

मिशन रोड, आश्रमपारा, जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल-735101
फोन : 8902051967/9046287351/9475918883/9046287352
व्हाट्सप : 9046287351
ईमेल : **jalpaiguri@rkmm.org** वेबसाइट : **www.rkmjalpaiguri.org**
(रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ का शाखा-केन्द्र)

विवेकानन्द सभागार के निर्माण हेतु विनम्र निवेदन

यथार्थ में वे ही जीवित हैं, जो दूसरों के लिये जीते हैं । – स्वामी विवेकानन्द

प्रिय मित्रो,

1928 से रामकृष्ण मिशन आश्रम, जलपाईगुड़ी शिक्षा, संस्कृति, स्वास्थ्य और आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से जलपाईगुड़ी और इसके आस-पास के क्षेत्रों के लोगों की सेवा कर रहा है । अपनी सेवा-गतिविधियों की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए हमने 'विवेकानन्द सभागार' नामक एक अत्याधुनिक निर्माण प्रारम्भ किया है । 1300 लोगों की बैठने की क्षमतावाला यह सभागार युवाओं, छात्रों, बच्चों, आम लोगों, वरिष्ठ नागरिकों, किसानों, शिक्षकों, पेशेवर विशेषज्ञों, परिवहन से सम्बन्धित श्रमिकों, अर्धसैनिकों के लिए विभिन्न प्रकार के सम्मेलनों और उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षिक कार्यक्रमों का आतिथ्य करेगा । ऐसे आयोजनों से स्वामी विवेकानन्द के मानव-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण के विचारों को प्रसारित किया जायेगा । सभागार को अमेरिका के प्रसिद्ध शिकागो संस्थान की प्रतिकृति के रूप में बनाया जा रहा है, जहाँ से स्वामी विवेकानन्द ने 1893 में अपना ऐतिहासिक व्याख्यान दिया था । इसके निर्माण में लगभग सात करोड़ रुपये खर्च होंगे । 40% निर्माण पूरा हो चुका है । शेष निर्माण-कार्य को पूर्ण करने हेतु आपातकालीन निधि की आवश्यकता है । हम आपसे विनम्रतापूर्वक अनुरोध करते हैं कि इस आदर्श परियोजना के लिये उदारतापूर्वक दान करें।

दान कैसे करें : 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, जलपाईगुड़ी' के नाम से अकाउंट पेयी चेक या बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान करें । आप सीधे हमारे बैंक के खातें में दान कर सकते हैं । हमारे बैंक खाते का विवरण है :

भारत में		**विदेश में**
भारतीय स्टेट बैंक जलपाईगुड़ी शाखा, क्लब रोड **A/C No. 11188188101** **IFSC Code SBIN0000095** **MICR No. 735002095**		भारतीय स्टेट बैंक जलपाईगुड़ी शाखा, क्लब रोड **A/C No. 11188171550** **IFSC Code SBIN0000095** **MICR No. 735002095**

रुपये दान करने के बाद अपना नाम, पूरा पता, मोबाइल नम्बर, व्हाट्सएप नम्बर, ईमेल आईडी और पैन/आधार नम्बर हमारी ईमेल आईडी पर अवश्य भेजें। यह भी उल्लेख करें कि आप 'विवेकानन्द सभागार' के लिए दान दे रहे हैं । आश्रम को प्रदत्त सभी दान आयकर-धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं । इस आदर्श परियोजना को सम्पूर्ण करने में हमारे साथ जुड़ें । यह हमारे लिए एक आदर्श सहायता होगी।

भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द आप पर अपना आशीर्वाद बनाये रखें ।

दान करने के लिए – कृपया इस कोड को स्कैन करें –

मानवता की सेवा में आपका

Swami Shivapremananda

(स्वामी शिवप्रेमानन्द)

सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

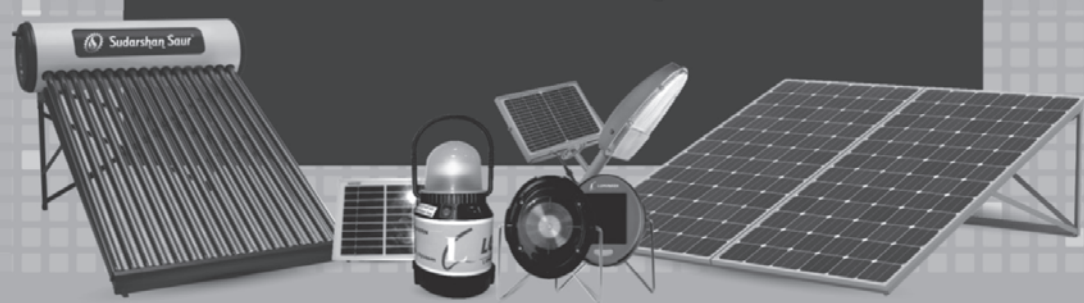

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ दिसम्बर २०२४ अंक १२

माँ सारदा स्तुतिः

रामकृष्णस्य या शक्तिर्भिन्नरूपेण रूपिता ।
नमामि ब्रह्मशक्तिं तां सारदां परमेश्वरीम् ।।
माता ब्रह्ममयी पूज्या ह्युद्बोधन निवासिनी ।
नमामि वैष्णवीं मायां सारदां परमेश्वरीम् ।।
परमा प्रकृतिर्नित्या माया च त्रिगुणात्मिका ।
सगुणा निर्गुणा चैव सारदां परमेश्वरीम् ।।

– जो भिन्न-भिन्न रूपों में श्रीरामकृष्ण की ही शक्ति हैं, उन्हीं ब्रह्मशक्तिस्वरूपिणी, परमेश्वरी श्रीसारदा देवी को प्रणाम करता हूँ। जो उद्बोधन में निवास करनेवाली एवं भक्तों की पूज्य ब्रह्ममयी माँ हैं, उन्हीं परमेश्वरी वैष्णवी माया रूपिणी श्रीसारदा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो नित्या, परमा प्रकृति एवं त्रिगुणात्मिका माया हैं, जो स्वरूपतः सगुणा एवं निर्गुणा हैं, वे ही परमेश्वरी श्रीसारदा देवी के रूप में लीला कर रही हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

पुरखों की थाती

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।।८५१।।

– विद्या मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है, उसका छिपा हुआ धन है; विद्या भोग, यश तथा सुख प्रदान करनेवाली है; विद्या समस्त गुरुओं में श्रेष्ठ गुरु है; विदेशयात्रा के दौरान मित्रवत् साथ देती है; विद्या सर्वोच्च देवता है; राजाओं के बीच में धन का नहीं, अपितु विद्या का ही सम्मान होता है; विद्याहीन व्यक्ति पशु के समान है।

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र गौरवम्।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते।।८५२।।

– संसार में विद्वान की प्रशंसा होती है, विद्वान को सर्वत्र सम्मान मिलता है, विद्या के द्वारा सब कुछ प्राप्त होता है और विद्या की ही सर्वत्र पूजा होती है।

विष्णूपरि स्थितो विष्णुः विष्णुः खादति विष्णवे।
कथं हससि रे विष्णो, सर्वं विष्णुमयं जगत् ।।८५३।।

– विष्णु के ऊपर विष्णु बैठा है, विष्णु ही विष्णु को खा रहा है, हे विष्णु तुम हँस क्यों रहे हो? यह सारा ब्रह्माण्ड ही विष्णुमय है।

हजारों गौरी-माताओं की आवश्यकता है : विवेकानन्द

इस देश की नारियों से भी मैं वही बात कहूँगा, जो पुरुषों से कहता हूँ। भारत में विश्वास करो और अपने भारतीय धर्म में विश्वास करो। शक्तिमान बनो, आशावान बनो, संकोच छोड़ो और याद रखो कि यदि हम विदेश से कोई वस्तु लेते हैं, तो उसके बदले में देने को संसार के किसी भी अन्य देश ... की तुलना में हिन्दू के पास उससे अनन्त गुना अधिक है।

गौरी-माँ कहाँ है? हजारों गौरी-माताओं की आवश्यकता है, जिनमें उन्हीं के समान महान एवं तेजोमय भाव हो।

भारत के लिए, विशेषकर नारी-समाज के लिए पुरुषों की अपेक्षा नारियों में एक सच्ची सिंहनी की आवश्यकता है।

पुरुष तथा नारी, दोनों ही आवश्यक हैं। ... हजारों पुरुष तथा नारी चाहिए, जो अग्नि की भाँति हिमालय से कन्याकुमारी तथा उत्तरी से दक्षिणी ध्रुव तक सम्पूर्ण विश्व में फैल जाएँ। वह बच्चों का खेल नहीं है और न उसके लिये समय ही है। जो बच्चों का खेल खेलना चाहते हैं, उन्हें अभी अलग हो जाना चाहिए, नहीं तो आगे उनके लिए बड़ी विपत्ति खड़ी हो जाएगी। हमें संगठन चाहिए, आलस्य को दूर कर दो, फैलो ! फैलो ! अग्नि की तरह चारों ओर फैल जाओ।

जगत को प्रकाश कौन देगा? बलिदान का भूतकाल से नियम रहा है और हाय! युगों तक इसी को रहना है। संसार के वीरों और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।

विश्व के धर्म प्राणहीन हास्यास्पद वस्तु हो गए हैं। जगत को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है चरित्र। संसार को ऐसे लोग चाहिए, जिनका जीवन निःस्वार्थ ज्वलन्त प्रेम का उदाहरण हो। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रभावी बना देगा। ...हमें 'साहसी' शब्द और उससे भी अधिक 'साहसी' कर्मों की आवश्यकता है। उठो ! उठो ! संसार दुख से जल रहा है। क्या तुम सो सकते हो?

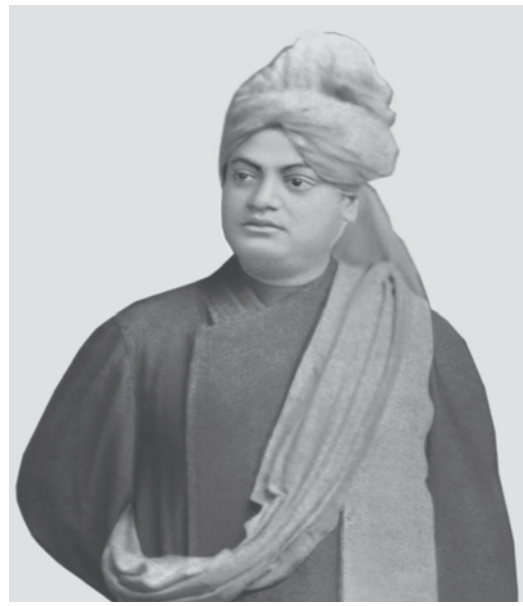

पाँच सौ पुरुष के द्वारा भारत को जय करने में पचास वर्ष लग सकते हैं, परन्तु पाँच सौ नारियों के द्वारा यह मात्र कुछ सप्ताहों में ही सम्पन्न हो सकता है।

अब भी श्रीरामकृष्ण की अनेक भक्तिमती शिष्याएँ हैं। उन्हें लेकर महिला-मठ प्रारम्भ करूँगा। माताजी (श्रीमाँ सारदा देवी) उनका केन्द्र बनेंगी। पहले उसमें श्रीरामकृष्ण के भक्तों की महिलाएँ, कन्याएँ निवास करेंगी, क्योंकि वे उस महिला-मठ की उपयोगिता आसानी से समझ सकेंगी। उसके बाद उन्हें देखकर अन्य गृहस्थ लोग भी इस महान कार्य में सहायक बनेंगे।...

जगत का कोई भी महान कार्य त्याग के बिना नहीं हुआ है। वटवृक्ष का अंकुर देखकर कौन कह सकता है कि समय आने पर वह एक विराट वृक्ष बनेगा? अभी तो इसी रूप में मठ की स्थापना करूँगा। फिर एकाध पीढ़ी के बाद देशवासी इस मठ की कद्र करने लगेंगे। जो विदेशी स्त्रियाँ मेरी शिष्याएँ बनी हैं, ये ही इस कार्य में जीवन उत्सर्ग करेंगी। तुम लोग भय तथा कापुरुषता छोड़कर इस कार्य में लग जाओ और इस उच्च आदर्श को सभी के सामने रख दो। देखना, समय आने पर इसकी प्रभा से देश आलोकित हो उठेगा।...

सम्पादकीय

श्रीमाँ सारदा की व्यस्त दिनचर्या और भगवन्नाम-जप

भगवान जब-जब इस धरा पर अवतरित होते हैं, तब-तब उनकी आह्लादिनी शक्ति भी उनकी सहचरी के रूप में उनके साथ लीला करने के लिये आती हैं। भगवान श्रीराम के साथ श्रीसीताजी, भगवान श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधिकाजी, चैतन्यदेव के साथ विष्णुप्रिया देवी, भगवान बुद्ध के साथ यशोधरा देवी और उसी क्रम में भगवान श्रीरामकृष्ण देव के साथ श्रीमाँ सारदा भी इस लोक में आविर्भूत हुईं। इन महीयसी देवियों का जीवन लोकदृष्टि से अत्यन्त संघर्षशील, कष्टप्रद दृष्टिगोचर होने पर भी मानव के लिये प्रेरक, सान्त्वनादायक और मंगलदायक है। इनके जीवन का चिन्तन-मनन करने से जीवन सन्तुलित, साधनापरक और परमात्मोन्मुखी होता है। इन शक्तिमयी देवियों के जीवन में कभी राजयोग, कभी ज्ञानयोग, कभी भक्तियोग और कभी कर्मयोग की प्रवणता दृष्टिगोचर होती है। किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन और किसी में सभी योगों का समन्वय दिखाई देता है। ये देवियाँ लोक में रहते हुये भी लोकातीत थीं। इनका व्यवहार, आचरण लौकिक दीखते हुये भी अलौकिक था। ये लोक में कर्म करती हुयी भी सदा अपने अभीष्ट परम प्रेमास्पद से संयुक्त रहती थीं।

कुछ लोगों की धारणा है कि दिनभर गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त रहकर साधन-भजन नहीं किया जा सकता। यह तो पूर्णतः गृहस्थ-कर्म और सामाजिक दायित्वों से मुक्त होकर ही सम्भव है। लेकिन श्रीमाँ सारदा का दिव्य जीवन लोक के समक्ष एक विलक्षण उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसका अनुशीलन कर पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का निर्वहण करते हुये भी अत्युच्च आध्यात्मिक जीवन यापन किया जा सकता है, मन को सदैव उच्चावस्था में रखा जा सकता है। यहाँ तक कि जप-ध्यान से समाधिसुख का भी आनन्द लिया जा सकता है।

श्रीमाँ सारदा का जीवन भी लौकिक रूप से अत्यन्त संघर्षशील दृष्टिगोचर होने पर भी आभ्यन्तरिक रूप से पूर्णतः ईश्वरपरायण एवं स्वस्वरूपस्थिति का परिचायक है। समस्त गृहस्थी के कार्य करते हुये भी उनका मन सदा संसारातीत रहा करता था, अपने परम प्रेमास्पद श्रीठाकुर में लगा रहता था। श्रीमाँ सारदा के सम्बन्ध में स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''श्रीमाँ ने अथक परिश्रम करके (राधू के) विवाह के समस्त मांगलिक कार्यों को सुसम्पन्न कराया। किन्तु आपात् दृष्टि से पारिवारिक झंझटों में इस प्रकार लगी रहने पर भी उनका मन सदैव किस प्रकार से संसार से परे विराजमान रहता था।''[१]

श्रीमाँ कर्मयोगिनी थीं। विविध कर्म करते हुये भी वे कर्म से अलिप्त थीं। उनके पास बहुत-से पुरुष-महिला भक्त सहयोगी थे, किन्तु वे स्वयं बहुत-से कार्य करती थीं। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''श्रीमाँ अपने हाथों काम करना पसन्द करती थीं और दूसरों को वैसा करने को कहा करती थीं। एक अपराह्न में ब्रह्मचारी गोपेश ने देखा कि माँ जयरामवाटी के नये मकान में नलिनी दीदी के कमरे में बैठकर धीरे-धीरे आटा गूँथ रही हैं। उस समय वहाँ नौकर-नौकरानी, सेवक-सेविका आदि की कमी नहीं थी, फिर भी उस बुढ़ापे और अस्वस्थ अवस्था में माँ को इतना परिश्रम करने की क्या आवश्यकता थी? ब्रह्मचारी ने मन की बात खोलकर माँ से कही, तो उन्होंने उत्तर दिया, ''बेटा, काम करना ही अच्छा है।'' फिर कुछ देर चुप रहकर गम्भीरता से कहा, 'आशीर्वाद दो कि जितने दिन रहूँ, काम करती ही जाऊँ।' ''[२]

कामारपुकुर का कर्ममय जीवन – श्रीमाँ के कामारपुकुर के कर्ममय जीवन के सम्बन्ध में स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''आश्विन मास में नवरात्रि के समय नवमी के दिन श्रीरामकृष्ण के यहाँ शीतला माता की षोडशोपचार पूजा होती, भोग लगता और ब्राह्मण-भोजन होता। श्रीमाँ पहले से ही अपने हाथों चावल बनातीं और अन्यान्य सामग्रियाँ संग्रह कर रखती थीं। वे रसोई भी पकातीं। परोसते समय वे शीबू दादा से कहतीं, ''शीबू, तू पत्तल बिछाकर जल और नमक दे, मैं सबको भात परोसती हूँ।'' सागर की माँ कहती है, ''उनका मानो लक्ष्मी का भंडार था। किसी चीज की कमी नहीं होती थी, जो बचता उसे सावधानी से रख देती थीं। दूसरे दिन हमलोगों को बुलाकर बड़े प्रेम से खिलाती थीं।'' इन उत्सवों के सिवा वे दैनिक

अतिथि-सेवा भी करती थीं। किसी भी अभ्यागत को वे अपने दरवाजे से नहीं लौटाती थीं।''[३]

दक्षिणेश्वर में श्रीमाँ की दिनचर्या – श्रीमाँ जब दक्षिणेश्वर में नौबतखाने में रहती थीं, तब उनकी दिनचर्या के सम्बन्ध में योगीन-माँ इस प्रकार बताती हैं – ''श्रीमाँ चार बजे प्रात:काल शौच-स्नानादि कर ध्यान में बैठतीं, क्योंकि ध्यान करने की ठाकुर की आज्ञा थी। इसके पश्चात् अन्य कार्यों को पूरा कर वे पूजा के लिए बैठतीं। पूजा, ध्यान और जप में लगभग डेढ़ घंटा समय लगता था। इसके पश्चात् सीढ़ी के नीचे रसोई पकाने के लिए बैठतीं। रसोई हो जाने पर जिस दिन अवसर मिलता, उस दिन अपने हाथों से ठाकुर को स्नान के लिए तेल मालिश कर देतीं। साढ़े दस, ग्यारह बजे के भीतर ठाकुर भोजन करते थे। जब वे स्नान करने जाते, तब श्रीमाँ जल्दी उनके लिए पान ठीक करतीं और ध्यान रखतीं कि वे स्नान करके लौटे या नहीं। उनके अपने कमरे में लौटते ही माँ वहाँ पीने का जल रख देतीं; उसके उपरान्त थाली परोसकर सामने लाकर रख देतीं। जब ठाकुर भोजन करने लगते, तब श्रीमाँ उनसे अनेक प्रकार की बातें करतीं, जिससे भोजन करते समय भावसमाधि उपस्थित हो उनके भोजन में बाधा न डाले। अकेले श्रीमाँ ही भोजन करते समय ठाकुर की भावसमाधि को रोक सकती थीं; दूसरे किसी से यह सम्भव नहीं था। ठाकुर के भोजन करने के पश्चात् श्रीमाँ अपने मुँह में थोड़ा कुछ डालकर पानी पी लेतीं। फिर पान लगाने बैठतीं। पान लग जाने पर गुनगुनाकर गातीं, बड़ी सावधानी से, ताकि कोई सुन न ले। इसके बाद जब मिल का एक बजे का भोंपू बजता, तब श्रीमाँ खाने को बैठतीं इस प्रकार डेढ़ या दो बजे के पूर्व कभी उनका भोजन नहीं होता था। भोजनोपरान्त नाममात्र के लिए विश्राम करतीं और तीन बजे के लगभग सीढ़ी की धूप में अपने केश सुखातीं। फिर रखे हुए पानी से जरा हाथ-मुँह धो लेतीं। सन्ध्या होने पर दिया-बत्ती जला और देवताओं को धूप-बत्ती दे वे ध्यान में बैठ जातीं। इसके पश्चात् रात का भोजन बनातीं। सबको खिला-पिलाकर तब स्वयं भोजन करतीं, उसके बाद सोने के लिए जातीं।''[४]

जयरामवाटी में श्रीमाँ की दिनचर्या – जब श्रीमाँ जयरामवाटी में रहती थीं, तब उनकी तत्कालीन दिनचर्या भी बड़ी व्यस्त थी। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज श्रीमाँ के जयरामवाटी के कार्यों का विवरण प्रस्तुत करते हैं – ''माँ के काम-काज का अन्त न था। जयरामवाटी में भक्तों की देख-भाल करना, सबेरे दो घंटे तक तरकारी काटना, भंडार घर से सामान निकाल देना, पूजा का आयोजन करना, स्वयं पूजा करना, पूजा के बाद प्रसाद बाँटना, कम-से-कम सौ बीड़े पान लगाना, शाम को अपने हाथों आटा गूँथकर रोटी, पूरी आदि बनाना, दूध औंटना, लालटेन साफ करना, आदि काम वे स्वयं प्रेम के साथ लगातार करती थीं। घर में अन्य लोगों के रहने पर भी लगता था, जैसे सभी काम श्रीमाँ के ही हों।''[५]

व्यस्त दिनचर्या में भी एक लाख जप – अब तक हमलोगों ने श्रीमाँ के विभिन्न स्थानों की व्यस्त दिनचर्या का अवलोकन किया है। अब हम देखेंगे कि किस प्रकार इतनी व्यस्तता में भी वे आनन्दित और प्रफुल्लित रहते हुये प्रतिदिन एक लाख जप करती थीं। श्रीमाँ सारदा देवी के चरित्रकार लिखते हैं – ''प्रतिदिन रात को श्रीमाँ तीन बजे उठकर नौबतखाने के पश्चिम के बरामदे में दक्षिण ओर मुख करके ध्यान करती थीं। इसमें कोई व्यतिक्रम नहीं होता था।... उनकी जप की संख्या भी बहुत अधिक थी। एक दिन उन्होंने अपनी भतीजी नलिनी से बातचीत में कहा, 'मैं तेरी अवस्था में कितने काम करती थी ! ... वह सब करती हुई भी नित्य एक लाख जप करती थी।'... इस जप-ध्यान के साथ उनके मन में निरन्तर प्रार्थना चलती रहती। रात्रि में जब चन्द्रमा उठता, तब गंगा के स्थिर जल में उसका प्रतिबिम्ब देखकर वे सजल नयन भगवान से प्रार्थना करतीं, ''चन्द्रमा में भी कलंक है, मेरे मन में कोई दाग न रहे।''[६]

श्रीमाँ कहती थीं कि परिश्रम करना चाहिये, क्या बिना परिश्रम के कुछ होता है? सांसारिक कार्यों के बीच भी कुछ समय निकालना चाहिये। अरी ! मैं अपनी बात क्या बताऊँ? मैं उस समय दक्षिणेश्वर में रात के तीन बजे उठकर जप करने बैठती थी।...''[७] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस व्यस्त दिनचर्या में भी श्रीमाँ भगवन्नाम-जप और प्रार्थना करती रहती थीं। अत: श्रीमाँ की यह दिनचर्या आज के व्यस्त जीवन में भी सदा ईश्वर-नाम-जप और प्रार्थना करने की प्रेरणा देती है। कोई भी व्यक्ति आधुनिक कर्मप्रवण व्यस्त जीवन में भी इसका अनुपालन कर अपने जीवन में भगवत् सान्निध्य का अनुभव कर शान्ति और आनन्द प्राप्त कर सकता है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. २०१ **२.** वही, पृ.३६२ **३.** श्रीमाँ सारदा, पृ.१३० **४.** वही, पृ. ६७ **५.** वही, ३६३ **६ और ७.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. ९४

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

शक्तिरूपिणी मातृरूपिणी श्रीमाँ सारदा

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

भारतवर्ष में नारी को पूर्ण मर्यादा के साथ न केवल सामाजिक जीवन में स्थान मिलता रहा, वरन् धार्मिक जीवन में भी महर्षि, गुरु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता रहा है। भारतीय नारी के आध्यात्मिक ऐश्वर्य की धारा वैदिक काल से ही प्रवाहित हो रही है, भले ही इस अति दीर्घ समयान्तराल के दौरान भारतवर्ष में हर प्रकार के उत्थान-पतन का काल चलता रहा हो। विशेष करके आध्यात्मिक जीवन की पराकाष्ठा को प्राप्त करने वाली महीयसी नारियों का राष्ट्रीय दृष्टि-पटल पर आगमन सर्वदा ही होता रहा है। मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा आदि वैदिक युग के नाम पुन: उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे धर्म, संस्कृति के पुनरुत्थान के समय से बहुत जनप्रिय हो गए हैं। मध्ययुगीन काल के विष्णुप्रिया और मीरा बाई सर्वजन विदित हैं ही। परन्तु नाम की लोकप्रियता अथवा महापुरुषों का गुणगान तक ही यदि पुनरुत्थान का लक्ष्य रखते हैं, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हम तामसिकता से ग्रस्त हैं एवं अपने आदर्श को जीवन में अपनाने का प्रयास करना नहीं चाहते हैं।

वर्तमान लेख इतिहास की कहानी की पुनरावृत्ति करना नहीं है। केवल इतना ही कहना काफी है कि अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ही पुनरुत्थान की पहल आरम्भ हो गयी थी। इतिहास उन तमाम प्रयासों का साक्षी है, जिसे हमारे समाज ने अपनाया और अनवरत विदेशी आक्रमणों और आन्तरिक कमियों के बावजूद हमारी महान सभ्यता की धारावाहिकता को सँजोकर रखा। संकट से भरे हुए दीर्घ समयान्तराल की खाई को न केवल पाटने की आवश्यकता थी, वरन् इस मृतप्राय भारतीय समाज में शक्ति-संचार करना भी अति आवश्यक हो गया था, जिससे कि वह पुन: आशिष्ठ, द्रढिष्ठ, बलिष्ठ होकर विश्वाचार्य हो सके। साथ-ही-साथ यह आवश्यकता थी कि विश्व के समक्ष सनातन धर्म और उससे जनित संस्कृति को विश्व कल्याण के लिए आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर सके। सर्वोपरि आवश्यक था आघात-प्रतिघात से जर्जरित हिन्दू समाज में शक्ति-संचार करने की। भारतवर्ष की यह विशेषता है कि प्रत्येक पुनरुत्थान का उत्तरदायित्व स्वयं ईश्वर ने अवतरित होकर लिया है। इसके अलावा समय-समय पर सिद्धपुरुषों और असाधारण गुण एवं शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों ने भी हमारे धर्म एवं संस्कृति में विचित्रता और सौन्दर्य की वृद्धि करते हुए हमारे समाज को प्रेरणा दी एवं इसकी धारावाहिकता को बनाए रखने में सहायक हुए। जिस प्रकार एक साधारण शिला पर नदी के बहाव में अनवरत विभिन्न दिशाओं से आघात लगने पर शनै:-शनै: शिवलिंग का रूप लेता है, उसी प्रकार हमारा व्यक्तित्व भी जीवन के असंख्य अनुभवों से रूपान्तरित और परिमार्जित होता हुआ अपने वर्तमान समय के अनुरूप सफल जीवन जीने में सक्षम होता है। यह स्वाभाविक ही है कि साधारण मनुष्य इस झंझावात में पड़कर परस्पर दोषारोपण, कलह झगड़े आदि के मकड़जाल में उलझ जाता है, परन्तु फिर आत्म-मंथन कर एक नवीन रूप धारणकर आधुनिकता का उत्तराधिकारी भी बनता है। इस प्रकार उसका नवीन व्यक्तित्व एवं जीवनशैली औरों के लिए प्रेरणा का स्रोत और पथ-प्रदर्शक बनता है। चूँकि व्यक्ति ही समाज की इकाई है, अत: समाज भी व्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक जीवन के अनुभवों को सहता-समेटता हुआ प्रासंगिक एवं प्रगतिशील बना रहता है।

परन्तु ईश्वर के अवतार को इस प्रक्रिया से गुजरना नहीं पड़ता है। वरन् बाल्यावस्था से ही वे मानव जाति को शिक्षा देते रहते हैं। उनके प्रत्येक कार्य का दूरगामी अर्थ होता है। अवतार पुरुष का सम्पूर्ण जीवन स्वाभाविक रूप से शिक्षाप्रद होता है। नवनिर्माण के लिए समय, परिस्थिति आदि के अनुरूप अवतारपुरुष जिन परम्पराओं की शुरुआत करते हैं, वे उनकी शक्ति से शक्तिशाली होकर जनमानस में सुदूर प्रसारी प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जैसा कि अन्य अवतारों के प्रभाव से हम पाते हैं। वर्तमान में श्रीरामकृष्ण-लीला को प्रारम्भ हुए लगभग १८० वर्ष हुए हैं और इसका वैश्विक स्तर पर प्रभाव निश्चित रूप से स्पष्ट होने लगा है। इस बार की अवनति सम्भवत: पिछले सभी अवनतियों की तुलना में अधिक ही होने के कारण उसके उपचार की व्यवस्था भी उसी अनुपात में होना आवश्यक था। हुआ भी ऐसा ही। श्रीरामकृष्ण के देहावसान के पश्चात् श्रीमाँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द के अलावा, उनके लीलापार्षदों ने लगभग पाँच दशकों तक हम सभी के बीच रहकर भारतीय समाज के गुण-दोषों का सही-सही आकलन कर, उसके इतिहास, धर्म और संस्कृति के सार एवं भावार्थ को समझकर हमारे समक्ष रखा। एक नयी परम्परा प्रारम्भ की, जो अतीत एवं भविष्य को अपने में समेटे हुए था। परन्तु 'धर्मस्य ग्लानि' की चरमावस्था में लगभग मूर्छित हुए भारतवासियों को हर दृष्टि से योग्य बनाने के लिए सबसे मूलभूत आवश्यकता थी 'शक्ति' की। श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी शक्ति की मूर्तरूप श्रीमाँ सारदा देवी को इस महान कार्य के उद्देश्य एवं महत्ता को स्पष्ट करने एवं इसमें शक्ति संचार करने हेतु हमारे मध्य दीर्घ ३४ वर्ष तक रखा।

श्रीमाँ सारदा देवी का परिचय श्रीरामकृष्ण देव ने ही सबके समक्ष रखा, अन्यथा आरम्भिक अवस्था में जब श्रीमाँ दक्षिणेश्वर में ठाकुरजी की सेवा में रह रही थीं, उस समय उनकी साधारण दिनचर्या देखकर उनके सच्चे स्वरूप का अनुमान लगाना तनिक भी सम्भव न था। श्रीरामकृष्ण देव ने अपने शिष्य स्वामी शिवानन्द को कहा था – 'ये जो मन्दिर की माँ (भवतारिणी देवी) और नहबत की माँ (श्रीमाँ) अभेद हैं।' एक अन्य दिन जब श्रीमाँ ने ठाकुर से प्रश्न किया – 'मैं तुम्हारी कौन हूँ।' सहज भाव से ठाकुर ने उत्तर दिया – 'तुम मेरी माँ आनन्दमयी हो।' ठाकुर दक्षिणेश्वर में आए हुए भक्तों, शिष्यों आदि को श्रीमाँ के स्वरूप के बारे में बताते रहते थे। एक बार योगिन माँ को ठाकुर ने कहा था – 'उसे (श्रीमाँ को) और इसे एक जानना।'' श्रीरामकृष्ण देव जब काशीपुर उद्यानवाटी में अस्वस्थ अवस्था में रह रहे थे, योगिन माँ को वृन्दावन तपस्या के लिए जाने की इच्छा हुई। श्रीरामकृष्ण को अपनी इच्छा व्यक्त करने पर ठाकुर राजी हुए, परन्तु साथ-ही-साथ बोले कि श्रीमाँ से भी पूछ ले। श्रीमाँ तभी बोल उठीं, जो कहना था, तुमने कह ही दिया। परन्तु ठाकुर ने फिर भी योगिन माँ से कहा, 'उसे सहमत करा कर जाना, तुम्हारा सब हो जाएगा।' श्रीदुर्गासप्तशती में है – **सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।** (१/५६) अर्थात् वे प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति के लिए वरदान देती हैं। यह भी देखा गया था कि जब श्रीमाँ ठाकुर के लिए भोजन लेकर उनके कमरे में प्रवेश करतीं, तो ठाकुर 'माँ ब्रह्ममयी' कहकर उठ खड़े होते। आदिशंकराचार्य द्वारा लिखित देव्यापराधक्षमापनस्तोत्र से भी श्रीमाँ के आविर्भाव का महत्त्व स्पष्ट होता है। यथा –

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्।।७।।

अर्थात् विषभोजी, श्मशानभस्म से भूषित, दिगम्बर, जटाधारी, कंठ में सर्पमाला पहने हुए, कपाली, भूतपति, पशुपति ने भी जो अद्वितीय जगदीश्वरत्व प्राप्त किया है, हे भवानि, वह आपसे पाणिग्रहणरूपी नैपुण्य के कारण ही हुआ है।

एक भक्त के पूछे प्रश्न – 'ठाकुर यदि स्वयं भगवान हैं, तब आप कौन हैं' का उत्तर देने में क्षणमात्र भी न रूककर श्रीमाँ बोलीं, 'मैं भी भगवती हूँ।' इसी प्रकार ठाकुर के भतीजे शिवलाल के साथ एक दिन कामारपुकुर से जयरामवाटी लौटते समय जब उसने हठ किया, तो श्रीमाँ ने अन्त में कह ही दिया – लोग कहते हैं काली। शिवलाल ने कहा, काली हो तो, ठीक। श्रीमाँ ने कहा, हाँ। अपने वास्तविक स्वरूप के बारे में कभी-कभी श्रीमाँ कह देती थीं। उनको दैनिक जीवन में घर के साधारण काम-काज में व्यस्त तथा राधु के लिए चिन्तित देखकर जब किसी ने पूछा, 'माँ देख रहा हूँ आप घोर माया में बद्ध हैं।' साथ-ही-साथ स्वीकार करते हुए और अपना परिचय देते हुए श्रीमाँ ने कहा, 'क्या करूँ,

माँ, मैं स्वयं ही माया हूँ।' इस प्रकार उपरोक्त कथोपकथनों से आदि शंकराचार्य के लिखे श्लोक का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। श्रीमाँ की शक्ति का आभास उनके दक्षिणेश्वर में निवास करते समय ही मिलना आरम्भ हो गया था। एक दिन जब ठाकुर ने उनसे स्वामी प्रेमानन्द को अधिक भोजन देने पर कहा कि ऐसा करने पर स्वामी प्रेमानन्द को रात में अधिक नींद आयेगी, तो साधन-भजन कैसे होगा। इसके उत्तर में श्रीमाँ ने कहा, उसके दो रोटी अधिक खाने पर तुम इतना क्यों सोचते हो। उनलोगों का भविष्य मैं देखूँगी। तुम उनलोगों के भोजन के बारे में इतना क्यों बोलते हो।' ठाकुर ने शान्त भाव से स्वीकार कर लिया।

'पूजनीया श्रीमाँ के पदचिन्ह हृदय में धारण करके यमपुरी जाने पर बेचारा वह भी आतंक से भाग जाएगा, याद रखना। स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज के द्वारा श्रीमाँ के पास दीक्षा के लिये जयरामबाटी भेजे गए अत्यन्त विषयासक्त तीन भक्तों की दीक्षा के बारे में स्वामी गौरीशानन्द ने वहाँ से लौटकर जब महाराज को श्रीमाँ की कही बात (मेरी संतानों ने वहाँ से अन्ततः ऐसी चीज भेजी) सुनाई, तो सुनकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी स्तम्भित रह गए। स्वामी प्रेमानन्द महाराज कुछ समय बाद बोले, धन्य माँ, यदि वे वह विष न ग्रहण करतीं, तो हमलोग जल गए होते।' यह बोलकर माँ को बार-बार प्रणाम करने लगे।

शक्ति की अभिव्यक्ति माधुर्य, दया, ममता, करुणा आदि भावों के रूप में भी होती है। श्रीमाँ के साथ भी उनके जीवन में अधिकतर ऐसा ही हुआ। क्या यह श्रीदुर्गासप्तशती के '**सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी**' अनुरूप ही था? इस बार की अवतारलीला की विशेषता यह है कि श्रीरामकृष्ण देव और उनकी सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी का जीवन साधारण जनसमाज के साथ सम्पूर्ण रूप से अतिविनय, स्नेहभाव से संलग्न होना। हम सभी को सान्त्वना देते हुए उन्होंने अभयवाणी भी दी है। उन्होंने कहा था – मैं तो हूँ, मेरे रहते भय क्यों? और भी कहा था, मैं सज्जन की भी माँ हूँ और दुर्जन की भी।' यही हमारे लिए सबसे बड़ा सहारा है। उनके वात्सल्य-भाव में सभी समा जाते हैं।

माँ की स्नेह छाया में मनुष्य का बौद्धिक और मानसिक विकास संतुलित रूप से होता है। मानव जाति के पूर्ण रूप से पतन के लिए जितने प्रकार के कारण सम्भव हो सकते हैं, वे सभी भारतीय समाज के ऊपर कई शताब्दियों से आघात करते रहे। परन्तु असीम सहनशक्ति के आवरण के भीतर हमारी संस्कृति के बीज सुरक्षित रह गए। मातृत्व भाव के प्रभाव से पुष्ट हो पुनः प्रस्फुटित एवं विकसित होकर सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का कार्य जो श्रीरामकृष्ण देव ने प्रारम्भ किया था, उसकी पूर्णता की प्राप्ति के लिए उन्होंने श्रीमाँ को यह उत्तरदायित्व सौंपा था। काशीपुर में एक दिन श्रीरामकृष्ण ने कुछ शिकायत भरे स्वर में श्रीमाँ से कहा, 'तुम क्या कुछ भी नहीं करोगी, (अपनी ओर संकेत करके) यही सब करेगा?' श्रीमाँ ने अपनी असमर्थता की बात सोचते हुए कहा, 'मैं तो नारी हूँ, मैं क्या कर सकती हूँ?' श्रीरामकृष्ण ने उसी क्षण उत्तर दिया, 'नहीं, नहीं, तुम्हें बहुत कुछ करना होगा।'' दक्षिणेश्वर में भी एक बार श्रीरामकृष्ण ने (अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए) श्रीमाँ से कहा था, 'आखिर इसने क्या किया है? तुम्हें इससे बहुत अधिक करना होगा।'' श्रीरामकृष्ण सस्वर गाया करते थे –

किससे कहूँ उस दायित्व को, जिसने घेरा यहाँ आने पर।
जिसका दर्द वही जाने, दूसरों को भला उसकी क्या खबर?

श्रीमाँ के द्वारा दी गयी शिक्षा की एक विशेषता थी। श्रीमाँ की शिक्षा में कभी भी दार्शनिक जटिलता नहीं रही। हमेशा सरल वाक्यों और कभी-कभी कुछ शब्दों में ही उत्तर देती थीं। परन्तु उनका जीवन कर्म-प्रधान ही रहा। जैसाकि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।३.२१।।

अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा ही करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य वैसा ही आचरण करते हैं।

बचपन से आरम्भ श्रीमाँ के कर्मबहुल जीवनधारा का वेग ईहलीला समाप्त होने के कुछ महीने पहले तक कभी भी प्रशमित नहीं हुआ। पहले ऐसा किसी अवतार लीला में हम नहीं पाते हैं। कलकत्ता में भक्तों का ताँता लगा रहता और जयरामबाटी में तीन पीढ़ियों के आत्मीय-स्वजन, जिनमें कुछ अस्वाभाविक स्वभाववाले तो कुछ झगड़ालु, देर रात्रि में लम्बी यात्रा कर आए हुए भक्तजनों के लिए भोजन पकाने और रोगग्रस्त स्वजन व भक्तों की हर प्रकार सेवा इत्यादि में व्यस्त रहतीं। सर्वोपरि, योग्यता की ओर ध्यान न देकर

प्रत्येक दीक्षाप्रार्थी को महामंत्र प्रदानकर मुक्ति का द्वार खोल देना। उपरोक्त प्रकार के लोगों के बीच, समुद्र की ऊर्मिमाला की भाँति अनवरत कर्मप्रवाह में स्थितप्रज्ञ रहते हुए श्रीमाँ ने दीर्घ छह दशक व्यतीत किये। इससे उत्तम उदाहरण की क्या हम इस आधुनिक युग में कल्पना भी कर सकते हैं।

इसके अलावा श्रीमाँ का मातृस्नेह से किया गया व्यवहार उनके दर्शनप्राप्त भक्त एवं अब उनकी जीवनी को पढ़नेवाले भक्तों के मन पर एक अमिट छाप छोड़ देता है। जयरामबाटी में यदि किसी को कुछ सामान लाने के लिए भेजा गया, तो माँ बिना खाये उसके लौटने की प्रतीक्षा करतीं, खड़े होकर देखती रहतीं, भले ही कितनी देर हो जाए। एक बार जयरामबाटी में श्रीमाँ के जन्मदिन के अवसर पर भक्तों की इच्छा हुई कि पहले माँ खाएँगी तत्पश्चात् बाकी सब लोग।

यद्यपि माँ हमेशा सबको भोजन कराकर ही स्वयं खाती थीं, परन्तु आज बिना आपत्ति के राजी हो गईं। ठाकुर के भोग के थाल से सभी द्रव्य माँ के लिए प्रस्तुत करने पर उन्होंने शीघ्र ही चखा और कहा, 'सन्तानों के खाने के पहले मेरे गले के नीचे नहीं उतरता है, शीघ्र ही सबके लिए व्यवस्था करो।' सबके बैठ जाने पर उनका मन शान्त हुआ और स्नेहपूर्वक सन्तानों को खाते हुए देखने लगीं।

संन्यासी और गृहस्थ शिष्यों के प्रति श्रीमाँ का स्नेह समान वर्षित होता था। जयरामबाटी में कई सौभाग्यशाली त्यागी-संतानों को श्रीमाँ ने संन्यास-दीक्षा देकर कृतार्थ भी किया था। बोधगया में बौद्धमठ की सुख-समृद्धि को देखकर श्रीमाँ के मातृहृदय से निकल पड़ी यह प्रार्थना – ''ठाकुर, मेरी संतानों को रहने का स्थान नहीं, खाने का भी अभाव है और द्वार-द्वार भटके रहे हैं। उनलोगों के लिए रहने की कुछ व्यवस्था होती।'' पूजनीया योगिन माँ ने स्वामी सारदेशानन्द जी से कहा था, 'जो कुछ मठ इत्यादि देख रहे हो, यह सब माँ की कृपा से हुआ है। जहाँ जो दिख गया (देव-विग्रह) रो-रोकर विनती की है, ठाकुर ! मेरे बच्चों को सिर छिपाने की थोड़ी-सी जगह कर दो, उनके भोजन की व्यवस्था करो।' माँ की इच्छा पूर्ण हुई।' १ मई, १८९७ को बलराम बसु के घर 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना के लिए की गई बैठक में स्वामी विवेकानन्द ने अपने वक्तव्य में कहा था 'आज हमारा यह जो संघ बनने जा रहा है, वे (श्रीमाँ) उसकी रक्षिका, पालनकारिणी हमारी संघजननी हैं।'

श्रीमाँ का मातृत्व सीमाहीन था, यह सर्वजन विदित है। उनका बचपन से ही अपने भाइयों की देखभाल एवं सूखाग्रस्त ग्रामवासियों को खिचड़ी खिलाते वक्त पंखा झलना, मातृत्व-प्रेम से पूर्ण था। एक भक्त-युवक ने एक दिन श्रीमाँ के पास आकर कहा, 'सचमुच मैंने इतने अपराध किए हैं कि तुम्हें बोल भी नहीं पा रहा हूँ।'' श्रीमाँ ने उसके माथे पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा, ''माँ के पास संतान संतान ही होती है।'' श्रीमाँ के अलौकिक प्रेम की शीतल वारि से अवगाहन कर भगिनी निवेदिता ने सारा जीवन भारत के चहुँमुखी विकास के लिए उत्सर्ग कर दिया था। अनगिनत उदाहरण दिए जा सकते हैं। श्रीमाँ के शब्दकोष में स्वदेश-विदेश, शत्रु-मित्र जैसे शब्द नहीं थे। समग्र विश्व ही उनका 'अपना' था। यहाँ तक कि उनका गुरुभाव भी एक स्नेहमयी जननी के वात्सल्य-प्रेम से ओतप्रोत था। विष्णुपुर रेलवे स्टेशन पर जब कुली ने आकर श्रीमाँ को प्रणाम किया और भक्ति-भाव से कहा, 'तू मेरी जानकी है, तुझे मैं कितने दिनों से खोज रहा था। इतने दिनों तू कहाँ थी?' कहकर गद्‌गद् कंठ से रोने लगा। श्रीमाँ के कहने पर जब उसने उनके पैरों पर एक फूल लाकर अर्पण किया, तो श्रीमाँ ने वहीं उसे दीक्षा दी। यहाँ ध्यान देनेवाली बात यह है कि दीक्षार्थी की योग्यता की किसी भी प्रकार से विवेचना किये बिना ही उसी क्षण महामन्त्र से दीक्षित कर शिष्य के रूप में ग्रहण कर लेना, माँ का अपनी संतान के प्रति सहज प्रेम के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ! सचमुच उनका गुरुभाव भी मातृत्व से पूर्ण था।

स्वामी सारदानन्द जी ने (भारत में शक्तिपूजा) लिखा है, ''चैतन्य के साथ शक्ति के नित्य मिलन को देखकर ही, शक्तिसम्पन्न पदार्थ विशेष में तथा समस्त जगत में भारतवर्ष के ऋषियों ने शवरूपी शिव पर नृत्य करती हुई शक्ति की आराधना की थी। पथ प्रदर्शक गुरु में, जगद्विमोहिनी नारीरूप में, विद्या, क्षमा, शान्ति, मोह, निद्रा, भ्रान्ति आदि सात्त्विक एवं तामसिक गुणों में उसी अद्वितीया, वराभयकरा, मुण्डमालिनी देवी का आविर्भाव-दर्शन श्रद्धा के साथ उनकी आराधना करके वे कृतार्थ हुए थे और मानवमात्र को उसी पथ पर चलकर कृतकृत्य होने की उन्होंने शिक्षा दी थी।'' स्वामी विवेकानन्द जी ने उदात्त कण्ठ से इस तरह हमारा आह्वान

शेष भाग पृष्ठ ५४२ पर

सत्यवादी ही नहीं, सत्य में प्रतिष्ठित भी हों

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

भीष्म देव इतने बड़े सन्त थे। अष्ट वसुओं में एक वसु थे। इतने बड़े महात्मा थे, ज्ञानी थे, बाल ब्रह्मचारी थे। पर उनके जीवन में भी जब यह प्रसंग आया कि वह 'मैं सत्यवादी हूँ' इस बात को प्रमाणित करें या गुरु की कृपा के सामने शीलपूर्वक गुरु जो कहें, उस आदेश का पालन करके सत्य में प्रतिष्ठित हों, तो वे अपने मन की इन वृत्तियों के ऊपर न उठ सके। मैं सत्यनिष्ठ हूँ, सत्य प्रतिज्ञ हूँ, ये सब लोग जानें, इसलिए गुरु की आज्ञा की अवहेलना करके उन्होंने गुरु से युद्ध किया। हम सभी जानते हैं, उसका दुष्परिणाम हुआ महाविनाश। महाभारत के युद्ध में महाविनाश हुआ। दूसरी ओर भगवान राम के जीवन में इतने प्रसंग आये, पर किन्हीं प्रसंगों में भगवान राम ने यह प्रतिष्ठित करने का प्रयास नहीं किया कि मैं सत्यवादी हूँ। गुरु ने जो आज्ञा दी, उसका उन्होंने पालन किया। भगवान श्रीकृष्ण सत्यवादी थे क्या? वे तो स्वयं सत्यस्वरूप थे। युधिष्ठिर के प्रसंग में क्या हुआ?

भीमसेन ने अश्वत्थामा नाम के हाथी को मार दिया। युधिष्ठिर को केवल इतना कहना था कि हाथी मरा या मनुष्य मरा, इसमें मुझे सन्देह है, यह मैं नहीं कह सकता – 'नरो हतो या अश्वत्थामा हत:।' युधिष्ठिर को यह लगा कि मेरी सत्य निष्ठा चली जायेगी। युद्ध में हार जाओ, तो हार जाओ, तुम्हारा विनाश हो तो हो, पर मेरी सत्यनिष्ठा बनी रहेगी। उसका प्रमाण कहते हैं कि उनका रथ तीन अँगुल ऊपर चलता था। अर्थात् मैं दूसरों से ऊपर हूँ। तो यह वृत्ति जीवन में तथाकथित सत्यवादी लोगों के जीवन में आ जाती है। इसके साथ जब अहंकार आता है, तो जीवन से शील चला जाता है। यदि शील चला गया, तो जीवन में अन्य कोई भी गुण हो, मनुष्य को उस गुण का लाभ नहीं मिल सकता। चाहे उसमें नम्रता हो, चाहे उसमें करुणा हो, किन्तु यदि जीवन में शील नहीं है, तो शील के अभाव में गुणों का अभिमान आ जायेगा। गुणों का अभिमान आने से वे गुण रस्सी होकर मनुष्य को बाँधेंगे, उसे मुक्त नहीं करेंगे। इसलिए हमें आप्राण यह प्रयत्न करना पड़ेगा कि साधक के जीवन में शील प्रतिष्ठित हो। शील यदि प्रतिष्ठित हुआ, तो दूसरे सद्गुण अपने आप हमारे जीवन में आयेंगे और हमें आगे बढ़ायेंगे।

चातक जैसी निष्ठा हमारे जीवन में आनी चाहिये। चातक के समान निष्ठा जीवन में परम आवश्यक है। चातक के समान अगर निष्ठा न होगी, तो अनन्यता नहीं आयेगी और अनन्यता यदि नहीं आयेगी, तो हम उस परम तत्त्व के पास नहीं पहुँच सकेंगे। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य ही यह है कि उसके जीवन में अनन्यता आ जाये। चाहे जिस मार्ग से वह जाये, अनन्यता, अनन्य निष्ठा उसके जीवन में आवश्यक है। जब हम साधना करते हैं, तो गुण और अवगुण की समस्या हमारे जीवन में बड़ी प्रबल होती है। प्रत्येक साधक और साधिका के जीवन में यह प्रसंग आता है। साधक का तात्पर्य ही है कि वह गुणों का अर्जन करने लगता है और दोषों का वर्जन करता है।

दोषों के वर्जन और गुणों के अर्जन के साथ-साथ हमें दूसरों में गुण-दोष देखने की वृत्ति प्राप्त होती है। उसके परिणामस्वरूप हम राग और द्वेष से ग्रसित हो जाते हैं। वस्तुत: गुण तो भगवान के ही हैं। पर जिस व्यक्ति में हम गुण देखते हैं, उसके प्रति राग हो जाता है और जिसके जीवन में दोष देखते हैं, उसके प्रति द्वेष हो जाता है। हमारे मन में द्वेष के कारण दृष्टि ओझल हो जाती है। हमारी समस्या गुण-दोष देखने की नहीं है, गुण और दोष से ऊपर उठने की है।

जब हमको भयंकर में भी, रौद्र में भी, बीभत्स में भी

सबमें अपने इष्ट के, ब्रह्म के दर्शन होंगे, तभी हम जीवन में उन ऊँचाइयों पर पहुँच सकेंगे, जहाँ गुण और दोष हमारे लिए समान होंगे, समत्व होंगे। किन्तु ऐसी समता उपलब्ध करने के लिए निर्गुण निराकार ब्रह्म की हम साधना करना चाहें तो सम्भव नहीं है। अद्वितीय ब्रह्म या निर्गुण या निर्दोष ब्रह्म साधना की अपेक्षा नहीं रखता। क्योंकि वह सबमें वर्तमान है, सबमें विद्यमान है। ऐसा ब्रह्म सबमें विद्यमान है। किन्तु जब वह हमारी सहायता नहीं कर सकता, तो उसको हम रूप देते हैं। यह रूप किसी भक्ति के माध्यम से ही दिया जाता है।

जीवन में वैराग्य और अनुराग, वैराग्य और भक्ति जब प्रतिष्ठित होते हैं, तो वह निर्गुण-निराकार ब्रह्म सगुण-साकार होकर हमारी सहायता करता है। जब वह सहायता करता है, तो हमारे जीवन का उद्देश्य निश्चित हो जाता है। तब साधना के क्रम में हम इष्ट की कृपा से गुणों का अर्जन और दुर्गुणों का वर्जन करने लगते हैं। तब हम दुर्गुणों को, अवगुणों को, दोषों को त्यागते हैं और सद्गुणों में प्रतिष्ठित होते हैं। सद्गुणों में प्रतिष्ठित होने से, सत्य गुण प्रबल होने से हम अपने हृदय में अपने इष्ट को विराजमान करने में समर्थ होते हैं। जब हमारे हृदय में इष्ट, ईश्वर विराजमान होते हैं, तब हमारे जीवन में सारे सद्गुण आ जाते हैं। सद्गुण ईश्वर के अतिरिक्त और कहीं नहीं है। जब भगवान हमारे हृदय में प्रस्फुटित होते हैं या विराजमान होते हैं, आविर्भूत होते हैं, तो हमारे जीवन में सारे गुण आ जाते हैं। इन गुणों के साथ जब शील युक्त हो जाता है, तो इसी जीवन में हम धन्य हो जाते हैं। ○○○

पृष्ठ ५४० का शेष भाग

किया है, ''जिस शक्ति के उन्मेष मात्र से दिग्दिगन्तव्यापिनी प्रतिध्वनि जागृत हुई है, कल्पना से उसकी पूर्णावस्था को प्राप्त करो और वृथा सन्देह, दुर्बलता दासजाति-सुलभ ईर्ष्या-द्वेष त्याग करके इस महान युगचक्र के परिवर्तन में सहायता करो।''

भगवान् श्रीरामकृष्ण की सहधर्मिणी के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीमाँ सारदा देवी ने भावी भारत तथा विश्व को एक नव अभ्युदय के राजमार्ग पर ला दिया है। जब एक आदर्श स्थापित हो जाता है, तब प्रश्न रह जाता है, हम अपने आप को उस प्रकार ढालें। ईश्वरावतार ही आदर्श हों और उसमें मातृभाव प्रधान हो, तो हमें अपने प्रयास की अधिकता की आवश्यकता उतनी नहीं होती, जितना एक मनुष्य को यदि हम आदर्श मानें। यहाँ श्रीमाँ का आशीर्वाद ही प्रधान है। स्वामी गम्भीरानन्द लिखते हैं – 'माँ कोई निगूढ़ दर्शन अथवा जटिल मतवाद लेकर आविर्भूत नहीं हुई थीं, वे तो आई थीं जीवमात्र की कल्याण-विधायिनी जननी के रूप में, जननी के स्नेह रूप में। जननी के स्नेह की व्याख्या सन्तान के निकट करने की आवश्यकता नहीं होती।' हमें मात्र श्रीमाँ को 'माँ' कहकर पुकारना है, बाकी वे स्वयं हमें अपने मातृभाव के स्नेह-बन्धन से बाँधकर और अपनी शक्ति से जीवन के परम लक्ष्य की ओर ले जाएँगी। अत: आवश्यकता है इस पुनरुत्थान के समय श्रीमाँ के अलौकिक पवित्र स्नेह के बन्धन से अपने-आपको बाँधकर हम अपने व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर हों।

○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ - **१.** शतरुपे सारदा (इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कोलकाता) २. श्रीमाँ सारदा देवी-स्वामी गम्भीरानन्द ३. माँ की बातें

क्या वृन्दावन के ग्वाल-बालों ने जप और ध्यान करके श्रीकृष्ण को अपना बनाया था। उन्होंने तो भगवान को अपने उत्कट प्रेम के द्वारा जाना था।

प्रेम-भाव सबसे अधिक आवश्यक है। प्रेम के माध्यम से ही श्रीरामकृष्ण का आध्यात्मिक परिवार अंकुरित और विकसित हुआ है।

ठाकुर के बारे में सपने सच होते हैं। पर उन्होंने अपने शिष्यों को इन सपनों को दूसरों को, यहाँ तक कि स्वयं अपने को भी बताने के लिए मना किया है।

तुम जो भी भोजन करो, पहले भगवान को अर्पित करो। भगवान को अर्पित न किया गया भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। जैसा तुम्हारा अन्न होगा, वैसा ही तुम्हारा रक्त भी बनेगा। पवित्र भोजन से रक्त और मन पवित्र होते हैं और शक्ति मिलती है। पवित्र मन से ही प्रेमाभक्ति का उदय होता है। – श्रीमाँ सारदा देवी

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

जगद्धात्रीरूपिणी श्रीमाँ सारदा

स्वामी ईशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

वर्तमान युग में श्रीमाँ सारदा देवी जगद्धात्री का नव प्रकाश हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी सभी साधनाओं के अन्त में श्रीमाँ से कहा था – ''तुम मातृत्व भाव के विकास के लिये जगत की आधार जगद्धात्री होकर रहना।'' अनेक भक्तों ने श्रीमाँ सारदा का जगद्धात्री रूप में दर्शन किया है।

'सारदा-रामकृष्ण' नामक ग्रन्थ में श्री दुर्गापुरी देवी लिखती हैं कि श्रीमाँ सारदा के आविर्भाव के पूर्व देवी जगद्धात्री ने माँ के पिता श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय को दर्शन दिया था एवं इस घटना को उन्होंने स्वयं एक बार श्रीमाँ के मुख से सुना भी था। एक बार रामचन्द्र मुखोपाध्याय को एक अपूर्व दर्शन हुआ। श्री दुर्गापुरी देवी की भाषा में कहें, तो ब्राह्मण (अर्थात् श्रीमाँ के पिता) मुग्धचित्त होकर बहुत समय तक आमोदर नदी के तट पर बैठे रहे। उसके पश्चात् उन्होंने वहीं सन्ध्या आदि किया। इष्ट को प्रणाम कर जैसे ही वे जाने को तत्पर हुए, उन्होंने सामने देखा कि आकाश में विराट सिंह, जिसके मुख पर हिंसा का चिह्न मात्र भी नहीं है, किन्तु प्रशान्त, प्रसन्न उसकी दृष्टि है। पशुराज के पृष्ठ पर आसीन बालरवि सदृश तनु ज्योतिर्मयी चतुर्भुजी एक देवी मूर्ति हैं। वे नाना अलंकारों से विभूषित हैं तथा उनके एक हाथ में शंख, दूसरे में चक्र, तीसरे व चौथे में धनुष और पंचबाण हैं। पृथ्वी की ओर उनका एक चरण-कमल प्रसारित है। ये यज्ञोपवीतधारिणी कुमारी शक्ति देवी जगद्धात्री हैं। इसके कुछ ही दिनों पश्चात् स्वप्न में माँ के पिताजी ने पुनः देवी जगद्धात्री का दर्शन किया। किन्तु इस बार देवी ने द्विभुजा मानवीय रूप में उन्हें दर्शन दिया। प्रसन्नवदना भगवती ने मधुर हास्य स्वर में उनसे कहा – 'पिताश्री, हेमन्त ऋतु के अन्त में मैं तुम्हारे घर आऊँगी।'

जगद्धात्री पूजा के समय हलदारपुकुर के रामहृदय घोषाल ने श्रीमाँ का देवी जगद्धात्री के रूप में दर्शन किया था। माँ को देवी जगद्धात्री के सामने ध्यान करते देखकर वे बड़े ही आश्चर्यचकित हो बहुत देर तक खड़े हो एक देखते रहे। किन्तु कौन देवी जगद्धात्री हैं – प्रतिमा अथवा श्रीमाँ, ठीक-ठीक कुछ समझ में नहीं आया। श्रीमाँ को जगद्धात्री रूप में घोषाल महाशय का दर्शन एक अपवाद नहीं है, अपितु अनेकों भक्तों ने श्रीमाँ में देवी जगद्धात्री का दर्शन किया है।

एक बार माँ के सेवक चन्द्रमोहन को माँ के वास्तविक स्वरूप को देखने की इच्छा हुई, तब उन्होंने माताजी से कहा, माँ आपका वास्तविक स्वरूप देखना ही मेरी अन्तिम इच्छा है। इस बात पर माँ किसी भी प्रकार से राजी नहीं हुईं। उनके कई प्रकार से बहुत विनती करने पर माँ विवश हो वहाँ उपस्थित भक्तों से बोलीं, ''तुम लोग थोड़ी दूर पर बैठो, उसके साथ मेरी एक गुप्त बात है।'' चन्द्रमोहन को माँ ने कहा, ''देखो, केवल तुम ही देखोगे''। इस प्रकार बोलकर माँ ने उनके सामने अपने वास्तविक स्वरूप जगद्धात्रिमूर्ति को धारण किया। माँ की दिव्य आभा व ज्योतिर्मय मूर्ति को देखकर चन्द्रमोहन भाई मानो एक बार जैसे काठ की मूरत हो गए हों। माँ के शरीर से अनन्त ज्योति प्रकाशित हो रही थी, चारों और कमरा ज्योति से आलोकित हो रहा था। उस दिव्य ज्योति को देख पाना, उनके मानवीय नेत्रों के वश में न था। उन्होंने देखा कि माँ के दोनों ओर जया और विजया चँवर डुला रही हैं।

इस सम्बन्ध में वासनाबाला नन्दी की पुण्य स्मृतियाँ द्रष्टव्य हैं। एक दिन माँ के श्रीचरणों में तेल की मालिश करते-करते अचानक उसे झपकी आ गई। जब उसकी नींद खुली, तो उसने सहसा चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश देखा। इतना प्रकाश उसने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था, जैसे उस प्रकाश से पूरा कमरा ही आलोकित हो रहा हो।

उस प्रकाश पुंज के मध्य बैठी हुई हैं, जीवन्त माँ जगद्धात्री, किन्तु उसने माँ सारदा को कहीं भी नहीं देखा। डर से काँपते हुए माँ-माँ बोलती हुई दरवाजा खोलकर बाहर की ओर भागी। बाहर भी कहीं माँ को नहीं देख पायी। पुन: घर के भीतर प्रवेश किया, तब उसने देखा कि माँ जैसे नींद में पूरी तरह सोई हुई थीं, ठीक उसी प्रकार सोई हुई हैं। घर में पुन: प्रकाश नहीं है, कमरे के एक कोने में लालटेन का टिमटिमाता हल्का प्रकाश आ रहा है। माँ को उठाया, माँ उठकर ही बोलीं, तुमने क्या देखा है? उसने जो देखा था, सब बताया। माँ शान्त प्रफुल्लित हो मुस्कुराते हुये बोलीं, ''जो देखी हो, वह सब सत्य है। मैं ही जगद्धात्री हूँ, मैं ही दुर्गा, मैं ही लक्ष्मी, मैं ही सरस्वती और मैं ही काली हूँ।''

इसी प्रकार एक बार जयरामबाटी स्थित सिंहवाहिनी मन्दिर में भवतारिणी देवी ने एक दर्शन किया। उन्होंने देखा कि सिंहवाहिनी मन्दिर में देवी सिंहवाहिनी के आसन पर देवी जगद्धात्री बैठी हुई हैं। उसके कुछ समय पश्चात् ही उन्होंने देखा कि देवी जगद्धात्री के स्थान पर तो अब माँ दुर्गा विराजमान हैं। तदनन्तर उन्होंने पुन: देखा कि सिंहवाहिनी देवी के जिस आसन पर कुछ समय पहले देवी जगद्धात्री और दुर्गा विराजमान थीं, उनके स्थान पर उसी सिंहासन को आलोकित कर अब श्रीमाँ सारदा विद्यमान हैं। उसी क्षण उन्होंने भक्ति-द्रवित हो माँ को प्रणाम किया। इसके पश्चात् जब पुन: अपने मस्तक को उठाया, तो देखा कि सिंहासन पर जिस प्रकार हमेशा देवी सिंहवाहिनी का घट था अर्थात कलश था, ठीक वैसे ही है। माँ ने कृपा कर उन्हें पुन: जगद्धात्री और दुर्गा के रूप में दर्शन देकर अपने दैवी स्वरूप को प्रकाशित किया था।

एक बार स्वामी हरिप्रेमानन्द जी ने माँ के चरणों पर हाथ सहलाते-सहलाते सोचा कि क्या माँ वास्तव में देवी जगद्धात्री हैं? तुरन्त उन्होंने देखा कि अब वे एक वृद्धा के चरण नहीं है, अपितु एक युवती नारी का अलतालिप्त शोभायमान स्वर्ण-नुपूर-भूषित चरण है। आश्चर्यचकित हो उन्होंने माँ के श्रीमुख की ओर देखा, तो उन्हें स्वर्णकान्तिमयी त्रिनयनी चतुर्भुजी नाना अलंकारों से सुसज्जिता देवी जगद्धात्री का दर्शन हुआ। उनकी प्रकाशमयी मूर्ति के सिर पर सुन्दर मुकुट विराजमान है, हाथों में अस्त्र सुसज्जित हैं, उनके सर्वांग से सुन्दर ज्योति विकिरित हो रही है। उन्होंने पुन: ठीक से आँख मसल कर देखा, उन्हें उसी दिव्य मूर्ति का दर्शन हुआ। इसके पश्चात् हरिप्रेमानन्द जी 'माँ, माँ' कहते हुये मूर्छित हो गए। मूर्छा जाने पर उन्होंने पुन: देखा, तो माँ उनकी पीठ पर हाथ सहला रही हैं और कह रही हैं, हरि हरि, ओ हरी, उठो, उठो क्या हुआ?

इतना ही नहीं भानु बुआ ने भी एक दिन जयरामबाटी में श्रीमाँ का चतुर्भुज रूप में दर्शन किया था। सचिन्द्रचन्द्र मजूमदार की स्मृति कथा से हमें ज्ञात होता है कि वे और पद्मविनोद बाग-बाजार स्थित गंगा घाट पर प्रात: काल घूमने जाते थे। ठीक उसी समय श्रीमाँ ने गंगा में स्नान करते समय एक डुबकी लगाई। इसे देख पद्मविनोद श्रीचण्डी के एक श्लोक की आवृत्ति करने लगे। उन्होंने देखा कि माँ उन्हें अपने दोनों हाथों को उठाकर जल के भीतर से ही आशीर्वाद दे रही हैं और वे दोनों हाथ श्रीमाँ के हाथ नहीं, अपितु देवी जगद्धात्री के हाथ हैं, बिलकुल पद्मपुष्प की तरह। इस प्रकार विभिन्न समय में विभिन्न भक्तों ने श्रीमाँ में देवी जगद्धात्री का दर्शन किया है।

जगत को स्थिति प्रदान करने के कारण ही देवी जगद्धात्री नाम से प्रसिद्ध हैं। अब प्रश्न उठता है कि देवी स्थिति किस प्रकार प्रदान करेंगी? दो प्रकार से यह सम्भव है। प्रथम देवी के द्वारा असुरों का वध कर आसुरी शक्ति का नाश करके और द्वितीय देवी का स्वयं मानव शरीर में अवतरित होने पर, मनुष्यों के द्वारा उनकी दिव्य लीलाओं का स्मरण-मनन और उनकी वाणी का जीवन में पालन कर अपने देवत्व का विकास करके। तभी एक अभिनव धर्म की भाव-क्रान्ति प्रारम्भ होती है, जो अनेक लोगों को प्रभावित कर आध्यात्मिक पथ पर लाती है, जिससे एक आध्यात्मिक स्थिति का निर्माण होता है। इस प्रकार देवी जगत में आविर्भूत होकर भी जगत की स्थिति, रक्षा करती है। वर्तमान युग में श्रीमाँ के आगमन के माध्यम से जगत ने पुन: अपने उस लक्ष्य को प्राप्त किया है।

हम सभी जगद्धात्री देवी की मूर्ति के नीचे करीन्द्र अर्थात् हाथी को देखते हैं। यह हाथी विक्षिप्त मदमत्त मन का प्रतीक है। मनरूपी मदमत्त करीन्द्रासुर को मातृ-कृपा द्वारा सिंहरूपी पुरुष की सहायता से साधक वश में करते हैं। तभी उनके हृदय-पद्म में माँ जगद्धात्री का उदय होता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, मदमत्त मन को वश में करने से ही जगद्धात्री का उदय होता है। यही वास्तविक रूप में जगद्धात्री तत्त्व की सार्थकता है। ○○○

भगवद्गीता से मनु का जीवन सफल हुआ

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, हममें से कुछ लोग ही जानते होंगे कि मार्गशीर्ष माह शुक्ल पक्ष एकादशी तिथि को गीता जयन्ती मनाई जाती है, जो इस बार ११ दिसम्बर, २०२४ को है। कई बार लोग कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने से हमारे जीवन में क्या कुछ भी प्रभाव पड़ता है? और शास्त्र का अध्ययन क्यों करें? उदाहरण के रूप में २०२४ में भारत की ओर से इतिहास रचने वाली ओलम्पिक में २ मैडल जीत कर, जिसने देश का नाम उज्ज्वल किया, आज हम उसी 'मनु भाकर' की कहानी से प्रेरणा लेते हैं। हरियाणा में कुरूक्षेत्र ही वह धरती है, जहाँ श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध लड़ने का उपदेश दिया था। मनु भाकर की माँ चाहती थी कि वह डॉक्टर बने, लेकिन विद्यालय के खेल प्रशिक्षक ने उनकी माँ से कहा – डॉक्टर को कौन जानेगा? अगर वह देश के लिये मैडल जीतेगी, तो पूरा विश्व उसे जानेगा। वह (मनु) मार्शल आर्ट, टेनिस, बॉक्सिंग, स्केटिंग जैसे कई खेल खेला करती थी, पर उसने शूटिंग को अपना भविष्य बनाने के लिये चुना। मनु २०२० के टोक्यो ओलम्पिक में गई थी। डेब्यू करते समय उसके पिस्टल ने धोखा दे दिया और वह खेल से बाहर हो गई। वह भारत लौटी तो, बहुत दुखी हो गई। वह अन्दर से निराश थी। उसे ऐसा लगा कि शूटिंग (निशानेबाजी) छोड़ देती हूँ। मनु टोकियो ओलम्पिक से बाहर होने के बाद गीता के श्लोकों का अध्ययन करने लगी और धीरे-धीरे अपने मानसिक बल को बढ़ायी, श्रीमद् भगवद्गीता से प्रेरणा ली। जब वह भगवद्गीता पढ़ती थी, तब उसने सीखा कि कठिन समय में हम कैसे सकारात्मक विचार से आगे बढ़ते हैं, आत्म-विश्वास बनाये रखते हैं, तभी हमें मानसिक शान्ति मिलेगी और अपने कार्य को दृढ़ता से पूरा कर पायेंगे। २०२० में टोकियो ओलम्पिक्स से बाहर होने के बाद उसने खेल छोड़ने का निश्चय कर लिया। क्योंकि वह अपना पूरा उत्साह खो चुकी थी। लेकिन गीता पढ़ने के बाद वह उत्साहित हुई और ३ वर्ष बाद उसने अपने पुराने प्रशिक्षक को फोन किया और लगन व कठोर परिश्रम कर इतिहास रच दिया। मनु भाकर ने २०२४ के पेरिस ओलम्पिक में दोहरा पदक जीता, जो किसी भी भारतीय महिला खिलाड़ी ने नहीं किया था (पदक एकल व मिश्रित दोनों क्षेत्रों में)। वह सफल हुई, क्योंकि उसने शत प्रतिशत सच्चाई से परिश्रम किया।

तो बच्चो, मनु भाकर की कहानी से हमें प्रेरणा मिलती है कि टोकियो ओलम्पिक से बाहर होने के बाद कैसे उसने शास्त्रों का सहारा लेकर पुन: अपना उत्साह बढ़ाया। श्रीमद् भगवद्गीता ने उसे जीवन में युद्ध लड़ने की प्रेरणा दी। विजेता वही बनते हैं, जो बार-बार प्रयास करते हैं। मनु भाकर ने वैसा ही प्रयास करके दिखाया। अपने कठिन परिश्रम और लगन से जीत कर सपनों को सच कर दिखाया और अपने देश भारत का सम्मान बढ़ाया। गीता का एक प्रसिद्ध श्लोक है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।२/४७।।

कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, कभी कर्मफल में नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे अधिकार से बाहर है; तुम कर्मफल की आशा से कर्म में प्रवृत्त मत होओ, फिर कर्मत्याग में भी तुम्हारी प्रवृत्ति न हो अर्थात् अपना कर्तव्य-कर्म करते चलो।

तो बच्चो, शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ हमें निम्न बातों का भी विशेष ध्यान रखना होगा –

१. लक्ष्य बनाना २. कठिन परिश्रम करना ३. असफलता से हार न मानना ४. अपने कार्य के प्रति शत प्रतिशत समर्पित होना और ५. धैर्य रखना।

बच्चो, मुझे तो गीता का यह श्लोक बहुत पसन्द है। आप भी श्रीमद् भगवद्गीता का अध्ययन करें और पता लगायें कि उनमें से कौन-सा श्लोक आपके लिए प्रेरणादायी है। ○○○

मन्दिर शताब्दी विशेष

सामाजिक विकास में मन्दिरों की भूमिका

श्रीमती अनिता शुक्ला, शिक्षिका, वाराणसी

(इस वर्ष २०२४ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की बेलूड़ मठ स्थित मन्दिर स्थापना की शताब्दी के उपलक्ष्य में मन्दिरों से सम्बन्धित आलेख-शृंखला प्रकाशित की जा रही है।)

आदि शंकराचार्य के कथनानुसार ''जब ज्ञान की शुद्धता बनी रहेगी, तो सारा जीवन अपनी पूर्ण क्षमता तक पहुँच जायेगा। मन्दिर पूरी मानवता के लिए प्रकाश-स्तम्भ के रूप में चमकेंगे। जीवन समृद्धि, शान्ति, प्रचुरता और प्रसन्नता के स्तर तक बढ़ जाएगा।''

मन्दिर विश्वास, आशा, प्रेम, शान्ति, प्रायश्चित के भाव का विकास कर विविध संस्कृतियों तथा विविध गतिविधियों का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मन्दिर मात्र एक स्मारक या पूजा का स्थल नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण संसार के संचालन की धुरी है, जहाँ से गंगा, यमुना व सरस्वती की पवित्र धारा प्रवाहित होती है, जहाँ से अयोध्या, काशी, मथुरा व वृन्दावन का निर्माण होता है और जहाँ से राम, कृष्ण व बुद्ध की कथा जन-जन में प्रेम-त्याग-कर्म तथा मानवता के आदर्शों की प्राणवायु से सम्पूर्ण जगत की सभ्यता व संस्कृति की अजस्रधारा प्रवाहित होती रहती है।

वेद कहता है – ''प्राचीन भारतीय वैदिक परम्परा सम्पूर्ण सृष्टि को पुरुष के रूप में परिभाषित किया करती है। मन्दिर स्वयं में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है।''

भारतीय समाज में सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण में मन्दिरों की भूमिका शरीर में आत्मा और साँस की तरह है। ईश्वर के होने का विश्वास उनके स्वरूपों के दर्शन से और भी दृढ़ होने लगता है। मन्दिरों में विकसित सम्पूर्ण कलाओं की आध्यात्मिकता और वैज्ञानिकता हमारे ज्ञान चक्षु को खोल देती है। मूर्ति कला में वृक्षों, जंगलों, नदियों, पर्वतों, झरनों आदि के साथ-साथ कई देवी-देवताओं का निर्माण होता है। खजुराहों का सूर्य मन्दिर सम्पूर्ण कलाओं का केन्द्र है। दक्षिण भारत का एक-एक मन्दिर ज्ञान, विज्ञान और संस्कृति का परिचायक है।

किसी भी समाज व संस्कृति के विकास में शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। प्राचीन काल में ऋषि लोग मन्दिरों में ही गुरुकुल आश्रम में संस्थागत रूप से विद्या देकर विद्यार्थी को धर्म, कर्म, व्यायाम, युद्ध, धनुष-बाण आदि सम्पूर्ण क्षेत्र में पारंगत करते थे। दक्षिण भारत में कलारीपयाटू और उत्तर भारत में मल्लयुद्ध चार भागों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक भाग हिन्दू देवी-देवता के पौराणिक देवी योद्धा के नाम पर है।

धन्वन्तरि और चरक जैसे आयुर्वेदाचार्यों द्वारा स्थापित चिकित्सा-विद्या का प्रचार-प्रसार कई मन्दिरों में बने

चिकित्सालयों में देखने को मिलता है। मन्दिरों में विविध संस्कृति तथा विविध गतिविधियों के भक्तजन आते हैं। वे सम्पूर्ण आस्था से पूजा-अर्चना के पश्चात् एक-दूसरे से मिलते हैं। उनके बीच विचारों के आदान-प्रदान होते हैं। वे एक-दूसरे से अपना सुख-दुख भी बाँट लेते हैं। इतना ही नहीं, कठिन समय में वे एक-दूसरे के सहायक भी बन जाते है। मन्दिर एक ऐसा धार्मिक भवन है, जहाँ मानव के जन्म के पश्चात् कई प्रकार के संस्कार कराए जाते हैं। जैसे मुंडन संस्कार हो, यज्ञोपावीत संस्कार हो या विवाह-संस्कार। चाणक्य ने कहा था – मन्दिर न केवल स्थापत्य बुद्धि का प्रतीक है, बल्कि समृद्ध परम्परा और संस्कृति का जीवन्त प्रतिनिधित्व भी करता है। मन्दिर एक ऐसा पवित्र स्थल है,

जहाँ बैठकर इष्ट चिन्तन या जप-ध्यान आदि किया जाता है, जहाँ किसी भी विषय की आलोचना या चिन्तन निषिद्ध है। अर्थात् मन्दिरों में भावों की पवित्रता का विकास होता है। भावों और विचारों की शुद्धता एक स्वस्थ समाज की संरचना में सहायक है।

मानव में ब्रह्म की सर्जन शक्ति, विष्णु की पोषण शक्ति और शिव की संहार शक्ति मन्दिरों की गाथाओं की ही देन है। मन्दिर निश्चय ही मानव की आत्मिकशक्ति का केन्द्र है। प्राचीन मन्दिरों की संरचना में एक सम्पूर्ण शास्त्र समाहित होता है। केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वास्तुकला, शिल्पकला तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एकता का भी विकास मन्दिरों व तीर्थों से होता है। जिन ग्रामवासियों या व्यक्तियों ने पुस्तकें अथवा धार्मिक ग्रंथ नहीं पढ़े, वे भी मन्दिरों पर उत्कीर्ण कथाओं का मुख्य सार समझ लेते हैं। मन्दिर अन्वेषण का आधार है, जो हजारों वर्ष पहले प्राचीन काल में आय का मुख्य साधन व्यापार, व्यवसाय था। मन्दिर इस कार्य में सेतु का कार्य करते थे। राजा व प्रजा के बीच सम्बन्ध स्थापित होता था। राजा जनता से प्राप्त करों का एक निश्चित भाग धर्म-कार्य में लगाते थे, ताकि समाज में आर्थिक समृद्धि और सामाजिक एकता आगे आए और समाज में प्रसन्नता का वातावरण बने। पहले भी मन्दिरों और तीर्थों में मेले और उत्सव के आयोजन से कई प्रकार के आर्थिक लाभ होते थे। खिलौने से लेकर बड़े-बड़े आयुध भी क्रय-बिक्रय किए जाते थे, जिसकी परम्परा आज भी है। आज प्रत्येक तीर्थों में हजारों-हजारों लोगों की जीविका का साधन देखा जाता है। एक बात और, उत्सव तथा मेलों के आयोजन में दूसरे प्रान्तों के शासक, व्यापारी और साधारण जन व्यापार करने आते हैं। इससे मित्रता एवं धार्मिक, आर्थिक विकास की विरासतें बढ़ती रहती हैं। मन्दिर मात्र पूजन स्थल ही नहीं, वरन् उसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मूल्यों एवं उच्च स्तर भी प्राप्त हैं। उदाहरणस्वरूप हम सोमनाथ के मन्दिर को देख सकते हैं, जिसकी आर्थिक समृद्धि से आकर्षित होकर आक्रमणकारियों ने कई बार आक्रमण किया। प्राचीन काल से ही मन्दिर आर्थिक विकास का गढ़ रहा है। आज भी मन्दिर निवेश और आय का बहुत बड़ा साधन है। मन्दिरों में चढ़ावा से लेकर आस-पास के उन्नत बाजार, सभी आर्थिक उन्नति के मार्ग प्रशस्त करते हैं। अयोध्या के राम मन्दिर का उदाहरण हम ज्वलन्त रूप से देख सकते हैं, जो तीर्थाटन के नये युग का संकेत कर रहा है। अयोध्या के राम-मन्दिर के निर्माण के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व में भक्ति, आस्था, विश्वास तथा स्थानीय वर्ण व्यवस्था पंख लगाकर उड़ने को आतुर है। यहाँ तीर्थाटन का चक्रीय प्रभाव देखने को मिल रहा है। विश्व की सबसे प्राचीन तीर्थ-स्थली वाराणसी, जो धार्मिक आस्था की गढ़ रही है और जहाँ धार्मिक पर्यटन आर्थिक गतिविधियों की अहम् कुंजी है। यहाँ आनेवाले पर्यटक धर्म-स्थलों के अतिरिक्त स्थानीय उद्यमों, हस्तशिल्प उद्योग और सांस्कृतिक क्षेत्र को भी लाभान्वित करते हैं।

मन्दिर जाने से जो सकारात्मक उर्जा का संचार होता है, वह हमारे भीतर की पाँचों इन्द्रियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। मन्दिरों में विविध धर्म तथा विविध संस्कृति और गतिविधियों के भक्त आते हैं। वे एक दूसरे से मिलते हैं, तो विचारों और गतिविधियों का आदान-प्रदान होता है, दृढ़ विश्वास तथा ऊर्जा का संचार होता है। संत-महात्माओं ने यज्ञ आदि कर्मकाण्डों का तथा भारतीय संस्कृति का प्रचार, प्रसार कर सामाजिकता का विकास किया है। ऋषि, महर्षि मन्दिर में ही गुरुकुल की स्थापना कर संस्थागत रूप से विद्यार्थियों को शिक्षा-दीक्षा देते थे। वहीं व्यायामशाला, धनुर्विद्या, युद्धविद्या के साथ-साथ धर्मशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी।

दक्षिण भारत में 'कलारी पयाटू' जिसके प्रणेता भगवान परशुराम थे, यहाँ के विद्यार्थियों में ये सारे गुण विकसित किये जाते थे। उत्तर-भारत में भी मल्लयुद्ध चार भागों में विभाजित है। जिनमें से प्रत्येक प्रकार हिन्दू देवी-देवता या पौराणिक योद्धा के नाम पर ही है। कहते हैं कि वेद जब ब्रह्मज्ञान की बात करता है, तब वह किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं होता, क्योंकि वह व्यक्ति का साक्षात् अनुभव होता है। जहाँ तक मंदिरों की बात है, सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण की गंगा आज मन्दिरों की गंगोत्री से निकलकर ही सम्पूर्ण विश्व को पोषित कर रही है। वर्तमान शिक्षा पद्धति आज हममें केवल जीने-खाने और भौतिकता के विकास का मार्ग ही प्रशस्त कर रही है।

यदि गम्भीरता से देखा जाये, तो आर्थिक विकास का भी महत्त्वपूर्ण केन्द्र मन्दिर है। भारतीय संस्कृति में पूजा-पाठ यज्ञ, कर्मकाण्ड, मेले, उत्सव आदि का प्रचलन सदैव से रहा है। पूजा की परम्परा तो युगों से चली आ रही है,

जिसमें मन्दिरों का निर्माण राजा-महाराजा के लिए सम्मान की बात भी होती थी। भारतीय हिन्दू संस्कृति में गंगा, गीता और गाय को हमेशा से पूजनीय माना गया है। अत: इनके साज-सज्जा और संरक्षण के लिए मेले, यज्ञ आदि का प्रचलन हुआ। इतना ही नहीं, मन्दिरों के निर्माण में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया, ताकि आनेवाला समाज अपनी संस्कृति से जुड़ सके। जब हम समाज के विकास का आर्थिक पहलू देखते हैं, तो आज ही नहीं प्राचीन समय से ही मन्दिर जीविका का केन्द्र रहा है।

हजार वर्षों का इतिहास हमें परिचित कराता है कि मन्दिर की भित्तियों के एक-एक चित्र हजार शब्द के बराबर है। खजुराहो और उड़िसा का कोर्णाक का सूर्य मन्दिर सम्पूर्ण कलाओं का क्रेन्द्र हैं। दक्षिण भारत का एक-एक मन्दिर ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति का परिचायक है। उत्तर प्रदेश का मानस मन्दिर आदि सभी मानवता के क्रमिक विकास की गाथा गाते हैं। जब हम मन्दिरों के गर्भगृह में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ की अपूर्व शान्ति हमें ज्ञान व ध्यान की दिशा दिखाती है। वहाँ जब हम बैठकर ध्यान करते हैं, तो वह हमें सकारात्मक ज्ञान की ओर ले जाता है, जो सामाजिक विकास की संवेदना का दर्शन रहा है। भित्तियों पर उत्कीर्णित विभिन्न प्रतिमाओं और शिल्पों से हमें इतिहास और पुराणों के सन्दर्भ में जानकारी मिलती है, साथ ही परम्पराओं और सन्दर्भों की कई जानकारियाँ सामाजिक सम्बन्धों और मर्यादाओं का मार्ग प्रशस्त करती है।

आध्यात्मिकता प्रत्येक व्यक्ति का निजी क्षेत्र है, ईश्वर और आत्मा का सम्बन्ध अटूट है। 'जो ब्रह्माण्डे सो ही पिण्डे' इस घोषणा से मन्दिर के सभी भाग मानव शरीर के अंगों की तरह हैं। मन्दिरों का महत्त्व विद्यालय-सा श्रेष्ठ है। भारत को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य मन्दिरों, तीर्थों, मठों आदि का ही है। मन्दिर सूचना के सर्वोत्तम केन्द्र की तरह समुदायों में ताल-मेल करने में सहायक है। वह पर्यटन का आधार है। सामाजिक सम्मेलन जितना अधिक मन्दिरों, तीर्थों आदि में होते हैं, उतना अन्यत्र नहीं। अयोध्या में श्रीराम मन्दिर का निर्माण उसका जीवन्त उदाहरण है, जिसने देश-विदेश सभी को एक स्थान पर लाकर भारतीय धर्म-संस्कृति को पुनजीर्वित कर दिया।

आज के बच्चे कल के समाज हैं, राष्ट्र-निर्माण के वाहक हैं। बच्चों को विद्यालयीय शिक्षा के अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा भी देना अनिवार्य है और इसका ज्ञान उन्हें मन्दिरों के परिसर और भित्तियों पर उत्कीर्णित विभिन्न पशु-पक्षियों तथा देवी-देवताओं के चित्र अथवा मूर्तियों के सभी चित्रों से होता है। वहाँ उनकी जिज्ञासा बढ़ती है, जिससे वे अपने अभिभावक से प्रश्न करते हैं तथा जीवन मूल्यों से परिचित होते हैं, जो आगे चलकर सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जागृति करते हैं।

यदि ध्यान से देखा जाये, तो कोई भी मन्दिर हमेशा उत्तरी छोर पर बनाया जाता है, जहाँ से चुम्बकीय तरंगों का प्रवाह सबसे अधिक होता है, जिससे सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। मन्दिर में बजनेवाली शंख-ध्वनि, दूर-दूर तक सुनाई देनेवाला घंटा, भोग-प्रसाद, चरणामृत तथा धूप, अगरबत्ती की सुगन्ध नकारात्मक ऊर्जा का नाश करती है।

समाज के निर्माण का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है भौतिकता। हमारे धर्म में भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच संतुलन बनाए रखने के लिये चार आश्रमों को बनाया गया है। हम सभी भक्ति-मार्ग पर चलते हुए फिर गृहस्थ जीवन का दायित्व निभाते हुए भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच संतुलन बना सकते हैं।

उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं पर विचार करने के पश्चात् यह सिद्ध होता है कि समाज और संस्कृति के विकास में मन्दिरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। व्यक्ति से समाज है और समाज से व्यक्ति। प्रत्येक समाज के निर्माण में नैतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भौतिक, वैज्ञानिक या आध्यात्मिक भागों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आज विज्ञान अपनी चरम सीमा पर है, प्रत्येक हाथ में गूगल रूपी शिक्षक आसानी से उपलब्ध है, फिर भी मन्दिरों की महिमा, सनातन धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध है। सनातन अर्थात् शाश्वत या सदा बना रहनेवाला, जिसका न आदि है, न अन्त है और इसमें समाहित है – 'अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि'। सत् और तत् का सम्बोधक है सनातन, जिसमें क्रमश: सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चारों युगों का वर्णन मिलता है।

सनातन धर्म में ईश्वर, मोक्ष और आत्मा का तत्त्व अधिक ध्यान से जाना जा सकता है। हिन्दू सनातन का मूल है – पूजा-पाठ, जप-तप, दान-दया, सत्य, अहिंसा

शेष भाग पृष्ठ ५५३ पर

जीवन को गौरवशाली बनाने में प्रेरणा की आवश्यकता

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

महान लेखकों की प्रेरक पुस्तकें, जिसमें उन्होंने अपने जीवन के अनुभव और ज्ञान को साझा किया है, वे उन पाठकों के लिए, जिन्हें मार्गदर्शन और प्रेरणा की आवश्यकता होती है प्रगतिशील पथ पर आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। लेकिन किसी के भीतर ऐसी ही आकांक्षाओं के छोटे-छोटे बीज होने चाहिए, ताकि किसी प्रेरणादायी पुस्तक पढ़ने से वे उत्प्रेरित हों और धीरे-धीरे उन्हें विचारों की शक्तिशाली धाराओं में सशक्त कर सकें।

प्रेरणा किसी के हृदय को स्पर्श करती है और उसे ऊँचा उठाने के लिए उत्साह प्रदान करती है। यह हमें गति प्रदान करती है और अपने ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है।

विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ने से हमें प्रतिकूलताओं, कठिन चुनौतियों और कठिनाइयों को समझने में बहुत सहायता मिलती है। युवा दृढ़तापूर्वक उन चुनौतियों का सामना कर सकते हैं और अद्भुत प्रदर्शन करके सफल हो सकते हैं। ये प्रेरणादायी चरित्र जीवन में समय-समय पर आनेवाली विभिन्न चुनौतियों पर नियंत्रण पाने के लिए हृदय को प्रेरणा से भर देते हैं।

आइए, कुछ विश्व प्रसिद्ध विभूतियों के जीवन का अवलोकन करते हैं, जिनसे प्रेरणा लेकर अनेक व्यक्तियों ने अपने जीवन को गौरवान्वित किया है। इससे प्रेरणा की महत्त्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगोचर होती है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं : महान बनने के लिए आपके अन्दर महत्त्वकांक्षा होनी चाहिए। विशेष लक्ष्य को पूरा करने के लिए दृढ़ संकल्प की ललक का होना आवश्यक है। आइए, कुछ विश्व प्रसिद्ध व्यक्तित्व के जीवन पर चर्चा करते हैं, जिससे युवा अपने जीवन में दृढ़ संकल्प और प्रेरणा को अभिभूत कर सकते हैं।

जॉन डी रॉकफेलर (१८३९-१९३७)

स्वामी विवेकानन्द ने रॉकफेलर को प्रेरित किया और बिल गेट्स रॉकफेलर के परिवार से प्रेरित थे अमेरिका के सबसे धनी व्यक्ति, जॉन डी रॉकफेलर (१८३९-१९३७) ने तेल उद्योग में अपने फलते-फूलते व्यवसाय से बहुत बड़ी संपत्ति अर्जित की थी। रॉकफेलर अपनी संपत्ति का एक छोटा-सा हिस्सा दान में देना चाहते थे, लेकिन वे मुख्यत: चर्च में दान देते थे।

रॉकफेलर ने अपने उन सहयोगियों से कई बार स्वामी विवेकानन्द के बारे में सुना, जिन्होंने उस समय (१८९३) स्वामी विवेकानन्द को आतिथ्य प्रदान किया था। स्वामी विवेकानन्द ने पहली भेंट में रॉकफेलर को यह समझाया कि तुम्हारे द्वारा एकत्रित की गई विपुल सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है, बल्कि तुम तो संकटग्रस्त और अभावग्रस्त की भलाई के लिए इस सम्पत्ति को उन लोगों में बाँटने का एक साधन मात्र हो और भगवान ने तुम्हें प्रचुर सम्पत्ति इसलिए दी है, ताकि तुम्हें विश्व का कल्याण करने का सुअवसर प्राप्त हो। स्वामी विवेकानन्द के परामर्श ने उनके मन पर अमिट छाप छोड़ी और उनके दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन ला दिया। एक सप्ताह के बाद रॉकफेलर एक बार फिर स्वामी विवेकानन्द से मिले और एक सार्वजनिक संस्थान के लिए भारी धनराशि के माध्यम से जन कल्याण के लिए प्रथम बड़े दान की अपनी योजना की बात बताई। इसके अलावा, जैसे-जैसे रॉकफेलर की सम्पत्ति में तेजी से वृद्धि हुई, वैसे-वैसे शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आधारभूत विज्ञान और कला का समर्थन करके सार्वजनिक कल्याण में उनका योगदान भी बढ़ा।

डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. अब्दुल कलाम ने अपने बहनोई जलालुद्दीन से बहुत प्रेरणा ली। दोनों की आयु में काफी अन्तर था। अब्दुल कलाम को बचपन से ही जलालुद्दीन से लगातार प्रेरणा मिलती रही। वे जलालुद्दीन के साथ लंबी यात्रा पर जाते थे। समुद्र के रेतीले तटों पर आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते थे। जलालुद्दीन की शिक्षा सीमित थी, लेकिन उन्होंने अब्दुल कलाम को उच्च अध्ययन करने के लिए और जीवन में महान ऊँचाइयों तक

पहुँचने के लिए बहुत प्रेरित किया। जलालुद्दीन ने युवा अब्दुल कलाम के मन पर संकीर्ण सीमाओं को तोड़कर एक बहादुर, साहसी व्यक्ति बनने की अमिट छाप छोड़ी थी। जलालुद्दीन की इस ज्वलन्त प्रेरणा ने अब्दुल कलाम को अपने जीवन-प्रयासों में उत्कृष्टता प्राप्त करने और शानदार सफलता अर्जित करने का मार्ग प्रशस्त किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें भारत के राष्ट्रपति का पद प्राप्त हुआ।

थॉमस अल्वा एडिसन

थॉमस अल्वा एडिसन का जीवन दृढ़ संकल्प का एक और ज्वलन्त उदाहरण है। उनके नाम पर १९०३ पेटेण्ट थे और साथ में उन्हें अमेरिका के सबसे महान आविष्कारक का गौरव प्राप्त हुआ। उनके महान आविष्कारों से विश्वभर में लोगों के व्यावहारिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ, जिसमें फोनोग्राफ, मोशन पिक्चर कैमरा, इलेक्ट्रिक बल्ब, बिजली की उपयोगिताएँ, ध्वनि रिकॉर्डिंग, स्टॉक टिकर, मैकेनिकलवोट रिकॉर्डर, इलेक्ट्रिक कार के लिए बैटरी, विद्युत शक्ति, रिकॉर्डेड संगीत शामिल हैं। मात्र तीन माह के कार्यकाल में ही उनकी स्कूली शिक्षा छूट गयी! इसके बाद उनकी माँ ने उन्हें घर पर ही पढ़ाया और उन्होंने किताबों से ही अधिकांश अध्ययन किया। एक विद्यार्थी के रूप में उन्होंने अपनी आय को पूरा करने के लिए सब्जियाँ बेचने के अलावा रेलवे स्टेशन पर समाचार पत्र और कैंडी बेचकर कमाना शुरू कर दिया। एडिसन एक रेलवे डिब्बे में रासायनिक प्रयोग करते थे और जब एक उपकरण में आग लग गई, तो ट्रेन परिचालक ने उन्हें ट्रेन से बाहर फेंक दिया, जिसके परिणामस्वरूप एडिसन की बहुत कम उम्र में सुनने की क्षमता कम हो गई। बाद में उन्होंने एक टेलीग्राफ ऑपरेटर के रूप में काम किया, ताकि वह रात की पारी में कार्य कर सकें और दिन के दौरान अपने वैज्ञानिक प्रयोग जारी रख सके। उनकी उद्यमशीलता की प्रतिभा ने उन्हें नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया और उन्होंने सबसे बड़ी और सबसे प्रसिद्ध जनरल इलेक्ट्रिक सहित १४ कम्पनियों की स्थापना की।

बेंजामिन फ्रैंकलिन

आइए, अब हम प्रसिद्ध गणितज्ञ, लेखक, प्रकाशक, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, आविष्कारक, नागरिक कार्यकर्ता, राजनेता और एक राजनयिक बेंजामिन फ्रैंकलिन की प्रेरक कहानी पर दृष्टि डालते हैं। उन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थापक पिता के रूप में जाना जाता है, जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वतन्त्रता का घोषणा पत्र और संविधान को तैयार किया था। बचपन से ही विभिन्न चुनौतियों से जूझने के बाद अपने दृढ़ संकल्प से वे अपने जीवन में इतनी ऊँची ऊँचाइयों तक पहुँच सके। उनका जन्म पन्द्रह बच्चों वाले एक गरीब परिवार में हुआ था। दस वर्ष की आयु में उनकी स्कूली शिक्षा समाप्त हो गई। लेकिन इससे इस महान व्यक्ति की शिक्षा में कोई कमी नहीं आई और उन्होंने पुस्तकों के अध्ययन को माध्यम बनाकर स्व-शिक्षा प्राप्त की। स्वयं सीखने की अपनी प्रक्रिया में स्वयं का भार उठाने के लिए आवश्यक धन हेतु उन्होंने प्रिंटिंग प्रेस में प्रशिक्षु के रूप में काम किया और प्रिंटिंग उद्योग की बारीकियाँ सीखीं। किताबें और लेख लिखना उनकी जन्मजात प्रतिभा बन गई। वे प्रसिद्ध पुस्तक पुअर रिचर्ड्स अलामनैक से सुर्खियों में आए।

अमेरिकी फोटोग्राफर और डांसर क्रिस कैर के जीवन से प्रेरणा

अमेरिकी फोटोग्राफर और डांसर क्रिस कैर को कैंसर जैसी भयानक बीमारी ने जकड़ लिया था। परन्तु उन्होंने कैंसर जैसे भयानक रोग को भी एक व्यावसायिक अवसर में बदल दिया। ३२ साल की उम्र में इस अभिनेत्री को एक दुर्लभ स्टेज IV कैंसर का पता चला, जो उनके लीवर और फेफड़ों को प्रभावित कर रहा था। निराशा से टूटने की बजाय उन्होंने इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और इससे उबर गईं। उन्होंने अपने शरीर को विषाक्त पदार्थों से मुक्त करने के लिए दृढ़ संकल्प के साथ पोषण सम्बन्धित नियमों का कठोर पालन किया और कैंसर के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। उन्होंने अपनी किताब में कैंसर के विरुद्ध अपनी लड़ाई का दस्तावेजीकरण किया, जिसने उन्हें न्यूयॉर्क टाइम्स और अमेज़ॅन के सर्वश्रेष्ठ बिकनेवाली पुस्तक की लेखिका की उपाधि दी। इसके साथ उन्होंने एक वेलनेस वेबसाइट लॉन्च की और स्वस्थ जीवन जीने पर विशेष परामर्शक बन गईं।

युवाओ, आपमें सर्वोत्तम योग्यताएँ हैं। जो लोग लगातार चुनौती का सामना करते हैं, वे सदैव उच्च से उच्च स्तर पर पहुँचते जाएँगे। एक धधकती प्रेरणा दृढ़ संकल्प में रूपान्तरित हो जाती है। दृढ़ संकल्प कठिन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें प्रयत्नशील बनाता है।

अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प को

शेष भाग पृष्ठ ५५८ पर

भगवद्गीता जयन्ती विशेष

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रत्येक काल में प्रासंगिकता

डॉ. के.डी. शर्मा

सेवा.नि.प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

श्रीमद्भगवद्-गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे' का उल्लेख है, जिसका अर्थ है – 'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद है, जिसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य संवाद के रूप में ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का विस्तार से वर्णन है।'' समस्त उपनिषद् प्रकृति के शान्त वातावरण में अरण्य आश्रमों में गुरु-शिष्य संवाद के रूप में गाये गये, परन्तु गीतारूपी उपनिषद् के ब्रह्मज्ञान को जीवन की सबसे कठोर परिस्थिति, भीषण रणभूमि-कुरुक्षेत्र में गाकर ब्रह्मज्ञान को जीवन में उतारकर ज्ञान का कर्म में प्रतिफल कर दिखाया गया है। ब्रह्मज्ञान तत्त्वज्ञान है और योगशास्त्र कर्मयोग मार्ग है अर्थात् क्रियात्मक प्रयोग है। गीता की यही विलक्षण विशेषता है। गीता के स्वाध्याय से शान्ति तो मिलती ही है तथा इसके अतिरिक्त गीता एक उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बनाने तथा 'सर्वभूतहिते रता:'' (गीता ५/२५, १२/४) अर्थात् सर्वजन-हिताय कार्य करने की प्रेरणा देती है। गीता (४/१) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – 'मैंने इस अविनाशी योग को 'सूर्य', 'मनु', इक्ष्वाकु' से कहा। 'सूर्य', 'मनु', ईक्ष्वाकु' (मनु के पुत्र) गृहस्थ और कर्मयोगी थे। अंग्रेजी पढ़े-लिखे कुछ लोगों ने भ्रान्ति फैला दी कि गीता पढ़ने से व्यक्ति संन्यासी बन जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी दुष्प्रचार किया गया है कि 'महाभारत घर में रखने से घर में कलह होती है। महाभारत को पाँचवाँ वेद मानते हैं। महाभारत भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा विश्वकोष है। भारत में जो है, वह सब कुछ महाभारत में है तथा जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। गीता महाभारत के नौवें पर्व (भीष्म पर्व) का भाग है। गीता साक्षात् पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम के अवतार भगवान श्रीकृष्ण की वाणी होने से एक पूर्ण दर्शन है। पूर्ण से पूर्ण की ही अभिव्यक्ति होती है तथा गीता स्वयं भगवान के मुख से नि:सृत वाणी होने से पूर्ण है। चिन्मय मिशन के अध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी तेजोमयानन्द जी महाराज के अनुसार – ''संसार के सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती, किन्तु गीता के स्वाध्याय से परम शान्ति प्राप्त होती है।'' जब तक हम देश, काल, वस्तु परिस्थिति में सुख खोजते हैं, तब तक दु:ख तथा विषाद बना ही रहता है। दु:ख, अशान्ति तो मन में है, परन्तु हम सुख, शान्ति बाहर खोजते हैं। वास्तव में समस्या हमारे अन्दर है। हम जब अन्दर से कमजोर होते हैं, तो बाह्य परिस्थितियों से घबरा जाते है।

अर्जुन की मन:स्थिति पारिवारिक मोह के कारण दुर्बल हो गयी थी। इसके अलावा पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण को परम श्रद्धेय और अजेय जानकर उनके प्रति भय भी व्याप्त हो गया था। इस प्रकार अर्जुन का मन अशान्त था तथा उसके मन में मोह तथा अज्ञान का अन्धकार छा गया था। अर्जुन अवसादग्रस्त हो गया था। श्रीकृष्ण ने मार्गदर्शक और हितैषी होकर अर्जुन का विषाद दूर किया, उसे युद्ध करने के लिए प्रेरित किया तथा महाभारत के युद्ध में पाण्डवों को विजय दिलाई। हम सब को कई बार ऐसी विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, परन्तु पूर्ण श्रद्धा से गीता का स्वाध्याय किया जाये, तो हमको गीता के किसी न किसी श्लोक से समस्या का समाधान मिलता है।

गाँधीजी कहते थे – ''जब मैं समस्याओं से घिर जाता हूँ, आशा की कोई किरण नहीं दिखाई देती, तब मैं

गीता माता की शरण में जाता हूँ, तो चमकता हुआ कोई न कोई श्लोक मेरे चित्त में उभरता है और मेरी समस्या का समाधान कर जाता है और मैं मुस्कुराने लगता हूँ। मेरा जीवन अन्दर-बाह्य संकटों से घिरा हुआ है, परन्तु उनका कोई स्थायी प्रभाव मेरे जीवन पर नहीं पड़ता। इसका सारा श्रेय गीता की शिक्षाओं को है।'' इससे सिद्ध होता है कि गीता की प्रासंगिकता वर्तमान में भी है।

किसी भी ग्रन्थ की दो प्रकार से परीक्षा की जाती है – अन्तरंग-परीक्षा तथा बहिरंग-परीक्षा। अन्तरंग-परीक्षा में पूरे ग्रन्थ का गम्भीरता से गहन अध्ययन कर ग्रन्थ का मर्म, प्रमेय और मथितार्थ (ग्रंथ का मंथन कर उसका सार निकालना) जानना। इस दृष्टिकोण से गीता का ज्ञान सनातन है तथा व्यावहारिक एवं उपादेय है। गीता में अर्जुन ने मानव मन में उठनेवाली सभी समस्यायें भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष रखी तथा स्वयं भगवान ने उनका समाधान किया। जीवन तो संघर्ष का नाम है। जीवन में पग-पग पर चुनौतियाँ, समस्याएँ आती हैं, अत: भारतीय मनीषा के साथ-साथ विश्व मनीषा प्रारम्भ से लेकर आज तक गीता से प्रभावित है और भविष्य में भी प्रभावित रहेगी। मानव समाज के सभी वर्गों के विकास के समस्त सूत्र गीता में समाहित हैं। गीता सभी को सम्यक् तथा यथार्थ दृष्टि प्रदान करती है।

गीता की प्रासंगिकता महाभारत काल में जितनी थी, आज वैज्ञानिक युग में उससे अधिक है। गीता किसी बाह्य स्थिति का वर्णन नहीं करती। गीता मानव के मन का विश्लेषण करती है। पहले मन की समस्या बिल्ली के समान थी, तो आज वह हाथी के आकार की हो गयी, अर्थात् पहले की अपेक्षा व्यापक रूप में हो गयी। अत: आज गीता की प्रासंगिकता, उपादेयता और अधिक बढ़ गयी है। जब तक मनुष्य का अस्तित्व है, तब तक मनुष्य की समस्याएँ रहेंगी, अत: गीता की भी आवश्यकता सदैव रहेगी। गीता चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य, शाश्वत और आधुनिक है। गीता के सम्बन्ध में वेदव्यास जी स्वयं कहते हैं –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख-पद्माद् विनिःसृता।।

अर्थात् गीता सुगीता करने योग्य है। यानी गीता को भली-भाँति पढ़कर अर्थ, भावसहित अन्त:करण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो स्वयं श्रीपद्मनाथ श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकली हुई है, फिर अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है? अर्थात् अन्य शास्त्रों से कोई प्रयोजन नहीं।

गीता में ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का वर्णन करते हुए शुद्ध आचरण का भी विशेष उल्लेख किया गया है, जो आज भी उपादेय है। गीता (२/५४/७१) में स्थितप्रज्ञ (स्थिर बुद्धि) के लक्षणों का वर्णन करते हुए इन्द्रियों को वश में करने के लिए (२/५८-६१,६७,६८) श्लोकों में कहा गया है कि जिसकी इन्द्रियाँ पूर्णरूप से नियन्त्रित हैं, उस पुरुष की बुद्धि स्थिर होती है। गीता (२/६२-६३) में क्रोध उत्पन्न होने का कारण तथा उसके दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है – ''विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति भ्रमित हो जाती है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से मनुष्य का पतन हो जाता है।'' जिन मनुष्यों को क्रोध आता है, उन्हें इन श्लोकों तथा अर्थ को याद करके बार-बार दोहराते रहना चाहिए, ऐसा करने से क्रोध में कमी आ जायेगी।

गीता के तृतीय अध्याय में कर्म करने के लिये अत्यधिक बल दिया गया है। गीता (३/२०-२५) में भगवान् अर्जुन को निमित्त करके प्रत्येक मनुष्य को लोकसंग्रह हेतु कर्म करने का उपदेश देते हैं तथा भगवान स्वयं का उदाहरण गीता (३/२२-२५) में देते हैं। लोकसंग्रह का तात्पर्य – ''लोकमर्यादा सुरक्षित रखने के लिये लोगों को असत् से विमुख करके सत् के सम्मुख करने हेतु नि:स्वार्थ भाव से कर्म करना। लोगों के कल्याण के उद्देश्य से उनको कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगाना और शास्त्रविहित कर्मों को अनासक्तभाव से स्वयं करते हुए लोगों से आदर्श कर्म करवाना, यही लोकसंग्रह है। महाभारत में 'यक्ष युधिष्ठिर संवाद' में यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए महाराज युधिष्ठिर कहते हैं – ''महाजनो येन गत: स पन्था:' अर्थात् जिस मार्ग का अनुसरण महापुरुष करते हैं, वही श्रेष्ठ मार्ग है। लोक संग्रह में भगवान का तात्पर्य है – ''न केवल मानवजाति का कल्याण, अपितु समस्त जीवों का कल्याण करने के लिए कर्म करना चाहिए।''

गीता जीवन जीने की कला सिखाती है, व्यावहारिक ज्ञान का उपदेश देती है तथा सात्त्विक व्यवहार करने की शिक्षा देती है। चंचल मन को वश में करने की विधि गीता (६/३४,३५) में बतायी है – ''श्रीभगवान बोले – महाबाहो (अर्जुन) यह मन अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।'' गीता (१२/१३-१९) में भगवान कहते हैं – ''बुद्धिमान पुरुष सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित, सबका प्रेमी तथा हितैषी, अहंकाररहित, क्षमावान होता है और हर परिस्थिति में सन्तुष्ट रहता है। सज्जन पुरुष से कोई भी प्राणी उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा वह स्वयं भी किसी प्राणी से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और वह पक्षपातरहित होता है एवं मान-अपमान व निन्दा-स्तुति में सम रहता है। गीता (१४/६-१९) में सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी मनुष्यों के लक्षणों का् वर्णन किया गया है। गीता (१६/१-३) में दैवी-सम्पदा-युक्त मनुष्यों के गुणों का वर्णन किया गया है – ''दैवी-सम्पदायुक्त मनुष्य में भय का सर्वथा अभाव होता है, उसका अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) पूर्ण निर्मल होता है। वह मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट नहीं देता है, किसी का भी अपकार नहीं करता है तथा किसी से शत्रुभाव नहीं रखता है। गीता (१८/१९-४०) में ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, गति, तथा सुख आदि के गुणों के भेद से सात्त्विक, राजस तथा तामस इन तीन प्रकार से भली भाँति कहे गये हैं।

गीता के उपदेश को आचरण में लाने से परिवार तथा समाज में सुख-शान्ति मिलती है तथा राष्ट्र प्रगति के पथ की ओर अग्रसर होता है। हम सब बातें तो आदर्श व्यवहार की करते हैं, परन्तु स्वयं विपरीत आचरण करते हैं। भारत को फिर से विश्वगुरु बनाने के लिए गीता के उपदेशों का अनुसरण करना होगा। अत: गीता की उपादेयता न केवल वर्तमान में, अपितु सदैव रहेगी।

कुछ विद्वानों के अनुसार – ''शरीर एक क्षेत्र है। जब हृदय-देश में दैवी-सम्पत्ति का बाहुल्य होता है, तो यह शरीर धर्मक्षेत्र बन जाता है और जब इसमें आसुरी-सम्पत्ति का बाहुल्य होता है, तो यह शरीर कुरुक्षेत्र बन जाता है। प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण (सत्त्व गुण, रजो गुण, तमो गुण) द्वारा परवश होकर यह मनुष्य कर्म करता है।

पुरातत्त्ववादी हरियाणा, पंजाब आदि अनेक स्थलों में कुरुक्षेत्र के शोध में लगे हैं, किन्तु गीता (१३/१) में भगवान स्वयं कहते हैं –

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहु: क्षेत्रज्ञ इति तद्विद:।।

अर्थात् कौन्तेय! यह शरीर ही क्षेत्र (प्रकृति) है तथा इसको भली प्रकार जो जानता है, उसे क्षेत्रज्ञ (पुरुष) कहते हैं।

यह शरीर ही युद्ध क्षेत्र है, इसमें लड़नेवाली दो प्रवृत्तियाँ हैं – दैवी सम्पद (पाण्डु पुत्र) तथा आसुरी सम्पद (धृतराष्ट्र-पुत्र)। यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का संघर्ष है और यही वास्तविक युद्ध है। गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद् का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस प्रकार गीता सदा प्रासंगिक है। ○○○

पृष्ठ ५४८ का शेष भाग

और क्षमा। वास्तव में सनातन धर्म ही हिन्दू धर्म है, जिनके आराध्य मन्दिरों में प्रतिष्ठित किए जाते हैं, जो युग-युग से समाज को उसकी संस्कृति से परिचित कराते रहे हैं। परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदास जी महाराज ने साधक संजीवनी ग्रन्थ में लिखा है –

राजा धर्ममृते द्विज: पवमृते विद्यामृते योगिन:
कान्ता सत्त्वमृते हयो गतिमृते मृषा च शोभामृते।
योद्धा शूरमृते तपो वृत्तमृते गीत च पद्यान्मृते
भ्राता स्नेहमृते नरो हरिमृते लोके न भाति क्वचित्।।

ऋगवेद में भी यह मंत्र पढ़ने को मिलता है – **'अयं हस्तो मे भगवानयं मे भगवत्तर: अयं मे विश्वभेषजाय शिवाभिमर्शन:'।** इससे स्पष्ट है कि ईश्वर (भगवान) की मान्यता वैदिक काल से ही सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर करती है।

निष्कर्षत: मन्दिर, तीर्थ और यज्ञ आदि सभी धार्मिक स्थल सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जहाँ बच्चे, बूढ़े, युवा सभी अपनी प्राचीनतम संस्कृति और धर्म को समझ पाते हैं। इसलिए आज भी कहा जाता है –

चन्दन है इस देश की माटी तपोभूमि हर ग्राम है।
हर बाला देवी की प्रतिमा बच्चा-बच्चा राम है।।

○○○

प्रश्नोपनिषद् (५४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

शंका – बीज-वृक्ष-आदिवत् स्यात् इति चेत्। यथा बीजकार्यं वृक्षः तत्-कार्यं च फलं स्वकारण-कारणं बीजम् अभ्यन्तरी-करोति आम्र-आदि तद्वत् पुरुषम् अभ्यन्तरी-कुर्यात् शरीरं स्वकारण-कारणम् अपि इति चेत्।

– बीज और वृक्ष आदि के समान ऐसा (एक-दूसरे के कारण) हो सकते हैं, ऐसा कहें तो? जैसे बीज का कार्य वृक्ष है और उसका कार्य आम आदि फल, अपने कारण के कारण बीज को अपने भीतर कर लेते हैं, वैसे ही अपने कारण का कारण होने पर भी, शरीर पुरुष को अपने भीतर कर लेगा, यदि ऐसा कहें तो?

समाधान – न; अन्यत्वात् स-अवयवत्वात् च। दृष्टान्ते कारणबीजाद्-वृक्षफल-संवृत्तान् अन्यान्य-एव बीजानि दार्ष्टान्तिके तु स्वकारण-कारणभूतः स एव पुरुषः शरीरे अभ्यन्तरीकृतः श्रूयते।

– ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि एक-दूसरे से भिन्नता और अवयव-युक्त होने के कारण। दृष्टान्त में कारण-रूप बीज से, वृक्ष के फल में ढँके हुए अन्य बीजों से भिन्न हैं; परन्तु जिस (पुरुष) के लिये दृष्टान्त दिया जा रहा है, वहाँ तो अपने कारण का कारण-रूप वही पुरुष शरीर के भीतर है, ऐसा श्रुति में कहा गया है।

– बीज-वृक्ष-आदीनां स-अवयवत्वात् च स्यात् आधार-आधेयत्वं निः-अवयवः च पुरुषः स-अवयवाः च कलाः शरीरं च।

इसके सिवा अवयवयुक्त होने के कारण भी, बीज और वृक्ष आदि में परस्पर आधार-आधेय-भाव हो सकता है। परन्तु पुरुष निरवयव (अखण्ड) है और कलाएँ तथा शरीर सावयव हैं।

– एतेन आकाशस्य अपि शरीर-आधारत्वम् अनुपपन्नं किमुत् आकाश-कारणस्य पुरुषस्य तस्माद् असमानो दृष्टान्तः।

इससे तो, शरीर आकाश का भी आधार नहीं बन सकता, तो फिर आकाश के भी कारण-रूप पुरुष की तो बात ही क्या है? अत: यह दृष्टान्त अनुपयुक्त है।

शंका – किं दृष्टान्तेन वचनात् स्याद्-इति चेत्!

– दृष्टान्त की क्या आवश्यकता! श्रुति के ('अन्त:शरीर') वचन को ही आधार मानें, तो!

समाधान – न; वचनस्य अकारकत्वात्। न हि वचनं वस्तुनः अन्यथा-करणे व्याप्रियते। किं तर्हि?

– ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि वचन कुछ कर नहीं सकता। केवल वचन किसी वस्तु को बदलने में प्रवृत्त नहीं होता। तो फिर वह क्या करता है?

यथाभूत-अर्थ-अवद्योतने। तस्माद्-अन्तःशरीरे इति एतद्-वचनम्-अण्डस्य-अन्तर्व्योम्-इतिवत् च द्रष्टव्यम्।

– वचन वस्तु को यथार्थ रूप से दिखाने में ही प्रवृत्त होता है। अत: 'अन्त:शरीरे' इस वचन को 'ब्रह्माण्ड के भीतर आकाश' की भाँति समझना चाहिए।

– उपलब्धि-निमित्तत्वात् च, दर्शन-श्रवण-मनन-विज्ञान-आदि-लिङ्गैः अन्तःशरीरे परिच्छिन्न इव हि उपलभ्यते पुरुष उपलभ्यते च अत्र। अतः उच्यते अन्तःशरीरे सोम्य स पुरुष इति।

– इसके सिवा उपलब्धि का कारण होने से भी 'अन्त:शरीरे' कहा गया है । दर्शन, श्रवण, मनन, विज्ञान

शेष भाग पृष्ठ ५६० पर

रामगीता (३/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

एक बार प्रभु सुख आसीना।
लछिमन बचन कहे छल हीना।।
सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा।।
कहहु ग्यान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।।
३/१३/५-८

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।।
३/१४/०

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज तथा अन्य विराजमान संत और ब्रह्मचारियों के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम है। आप सब श्रोताओं का, देवियों का स्वागत है, अभिनन्दन है। अभी आपने श्रद्धेय स्वामीजी से कल की कथा का संक्षेप सूत्र सुना और वह सचमुच अद्भुत था ! वह आपके आगे के प्रसंग को सुनने, समझने में सहायक बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। जो प्रश्न कल प्रारम्भ किया गया था, पर उसे मैंने बीच में थोड़ा छोड़ दिया था। क्योंकि मैंने देख लिया कि घड़ी में नौ बजने में केवल दस मिनट शेष है। यदि उसकी व्याख्या हो, तो शायद लम्बा समय खिंच जाय। पर उसी क्रम से उस क्रम को आज आगे बढ़ाने की चेष्टा की जायेगी।

मोह की निन्दा, ममता और अहंकार की निन्दा शास्त्रो में बार-बार की गई, पर उसकी विलक्षणता यह है कि मनुष्य सच्चाई को देखना भी नहीं चाहता और देखना तो दूर, वह सुनना भी नहीं चाहता। पर यह बात और है कि परिस्थितियाँ उसे सत्य की वास्तविकता को देखने के लिए बाध्य करती हैं और वह सुनने के लिए भी बाध्य हो जाता है। इसका सबसे बड़ा दृष्टान्त धृतराष्ट्र है। धृतराष्ट्र अन्धा है। श्रीरामचरित-मानस में इस अन्धत्व को गोस्वामीजी ने मोह के ही रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने यह कहा कि संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जो मोह में अन्धा न हो गया हो?

मोह न अंध कीन्ह केहि केही।
को जग काम नचाव न जेही।। ७/६९/७

इसका अभिप्राय यह है कि जो दृष्टिहीन होता है, वह देख नहीं पाता है। पर धृतराष्ट्र केवल बाहर के नेत्र से ही अन्धे नहीं थे, बल्कि भीतर की दृष्टि भी उनमें नहीं थी। या यों कहें तो अधिक अच्छा होगा कि वह सब कुछ जानता तो है ही, जैसाकि मोह की व्याख्या आप सुनते रहे हैं, उसे सब ज्ञात है, सब जानते हैं कि किस तरह से उसके पुत्र अनीति का आश्रय ले रहे हैं, किस तरह से पाण्डु के पुत्रों पर अन्याय हो रहा है, पर सब कुछ जानते हुए भी उसके पास बहाना है कि मैंने नहीं देखा, मेरे पास तो दृष्टि नहीं है। और कई बार हमलोगों के जीवन में भी यही उत्तर होता है कि मैंने तो ऐसा कुछ नहीं देखा। तो जानते हुए भी हम वस्तुतः जानना ही नहीं चाहते। इसका सबसे सार्थक व्यंग्य और स्वरूप यह था कि भगवान वेदव्यास अनेक बार धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयत्न करते हैं और यह कहते हैं कि तुम्हारे पुत्रों के द्वारा जिस प्रकार का व्यवहार हो रहा है, उसका परिणाम बड़ा भयावह होगा। तुम उन्हें समझाने की चेष्टा करो। पर वे विफल होते हैं।

धृतराष्ट्र मोह है और गान्धारी यद्यपि पतिव्रता है, पर उसे आध्यात्मिक अर्थों में यही कहना उपयुक्त होगा कि वह ममता है। मोह पति और ममता पत्नी। वह ममता, ममता प्रतीत नहीं होती। ऐसा लगता है कि वह बड़ी गुणमयी है, पतिव्रता है। पतिव्रता की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा की गई है। जब अवसर आता है, तो उसकी वह ममता, जो उसके अन्तराल में गहराई में छिपी हुई थी, सामने आ जाती है। उसकी सबसे बड़ी विलक्षण परिणति यह है कि जब युद्ध प्रारम्भ होने का क्षण आया, तो भगवान वेदव्यास आए और उन्होंने धृतराष्ट्र से प्रस्ताव किया कि जो महाविनाशकारी युद्ध हो रहा है, मैं चाहता हूँ कि तुम स्वयं उसको अपनी आँखों से देखो। मैं वह दृष्टि तुम्हें दे सकता हूँ कि रणक्षेत्र में गये बिना ही, सारा दृश्य तुम्हें दिखाई देता रहेगा। कैसी अनोखी बात है ! अन्धे को कोई आँख देना चाहे, तो कौन अन्धा है, जो आँख नहीं चाहेगा? पर व्यंग्य क्या है? क्योंकि अन्धे को जो आँखें दी जा रही थीं, वह संहार को देखने के लिए, विनाश को देखने के लिये हैं। स्पष्ट था कि जो कुछ हो रहा है, उसमें उसके पुत्रों का और पुत्रों के पीछे स्वयं उसका ममत्व है। वह भले ही यह दिखाने की चेष्टा करता हो कि पाण्डवों के प्रति मेरे मन में बड़ा स्नेह है, लेकिन वह पूरी तरह से दुर्योधन में ही आसक्त है। यह संकेत मानो केवल उन्हीं के लिए नहीं है। हम सभी अगर अन्धे हैं और अधिकांश लोग तो अन्धे हैं ही। आध्यात्मिक अर्थों में अन्धे होने का अर्थ है – **ग्यान-बिराग नयन उरगारी।** ज्ञान और वैराग्य दो नेत्र हैं। अधिकांश व्यक्ति ज्ञानरहित और वैराग्य रहित भी हैं। कुछ शुक्राचार्य की तरह ज्ञानी हैं, पर विरागी नहीं हैं। धृतराष्ट्र की वह मनोवृत्ति, जो देखना नहीं चाहता। वह कहता है, मुझे दृष्टि नहीं चाहिए। पर व्यासजी तो छोड़ने वाले नहीं हैं। अच्छा, देखना नहीं चाहते, तो सुनना तो पड़ेगा। सुनो ! यही सत्संग है।

सत्संग माने केवल मीठी बातों से आपको भुलावा देना नहीं है। सत्संग का अर्थ है कि जो आप नहीं देखना चाहते हैं, उसको आप देखें और आप जो नहीं सुनना चाहते, उसे भी सुनें। क्योंकि व्यासजी का कहना था कि तुम नहीं देखोगे, तो सुनो। तब उन्होंने दूसरे को, संजय को वह दृष्टि दी। व्यासजी ने कहा, वह दृष्टि मैं संजय को दे रहा हूँ। संजय उस युद्ध का सारा दृश्य अपनी आँखों से देखेंगे और तुम्हें सुनायेंगे। तब बाध्य होकर धृतराष्ट्र को राजी होना पड़ा।

आप महाभारत को अगर ध्यान से पढ़ेंगे, तो एक अनोखी बात पायेंगे। दस दिनों तक धृतराष्ट्र ने संजय के उस दृष्टि का उपयोग नहीं किया। भले ही संजय सारा दृश्य देख रहे थे, पर उस सारे दृश्य का वर्णन करने की स्थिति कब आई? धृतराष्ट्र सुनने की स्थिति में तो है नहीं। देखना नहीं चाहने के बाद क्या सुनना चाहेंगे आप ! आप और हम सब कथा में आते हैं, कहते-सुनते हैं, पर कितने लोग वस्तुतः सुनते हैं और सुनते हैं तो कब सुनते हैं, कितनी देर सुनते हैं, क्या आप जानते हैं? धृतराष्ट्र ने सबसे पहले अपनी जिज्ञासा कब प्रकट की? जब संजय ने यह कहा कि महाराज, दस दिन हो गये युद्ध होते, अब अर्जुन के बाणों से बिद्ध होकर भीष्म पितामह रथ से गिर चुके हैं, शरशय्या पर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तब धृतराष्ट्र चौंक पड़ता है। क्यों? यह एक संकेत है। मोह की एक प्रकृति होती है कि कहीं न कहीं अपने सन्दर्भ में एक भ्रम पाल लेता है। जैसे यह कहा जाये कि ये वस्तुएँ कुपथ्य हैं, तो अभिमानी व्यक्ति तुरन्त कहेगा कि होगा दूसरों के लिये, मेरे लिए नहीं। इसका अभिप्राय क्या है? यह कि अपने आप को वह कुछ भिन्न मानता है। हनुमानजी जब रावण को उपदेश देने लगे, तो उन्होंने दो का ही संकेत किया। उन्होंने कहा – रावण, तुम्हारी सारी समस्याओं के मूल में मोह है। फिर वही बात! रावण शास्त्रों का, ज्योतिष का महान पण्डित है। कौन-सा ऐसा शास्त्र है, जिसका वह पण्डित नहीं है। उसे शस्त्र में, शास्त्र में, तपस्या में, अनगिनत क्षमताएँ उपलब्ध हैं। पर इतना होते हुए भी उसका आचरण तो बिल्कुल भिन्न है। सुन्दरकाण्ड में हनुमानजी निदान करते हुए जिस वाक्य का प्रयोग करते हैं, आपने वह पढ़ा होगा। यद्यपि आप पाठ भी करते होंगे, तो किसी कामना की पूर्ति के लिए करते होंगे, सुन्दरकाण्ड को समझने के लिए तो बहुत कम लोग उसे पढ़ना चाहते हैं। हनुमानजी ने कहा, देखो, जितनी समस्याएँ तुम्हारे जीवन में बाहर दिखाई दे रही हैं, तुम्हारा काम का अतिरेक, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा लोभ, जानते हो, इसके मूल में क्या है? 'मोह मूल' – इन सबका मूल मोह है। तुम जानते हो, पर जानते हुए भी तुम्हारा आचरण ठीक उसके उलटा है और तब उन्होंने दो बातें बताईं, दवा बताई और पथ्य बताया।

आपने देखा होगा, आयुर्वेद शास्त्र में दवा के साथ-साथ पथ्य को भी बड़ा महत्त्व दिया गया है। पथ्य माने, जो चिकित्सक, वैद्य है, वह आपको बतायेगा कि देखिए, इन वस्तुओं को छोड़िए, मत खाइए और आप इन वस्तुओं को

ले सकते हैं। हनुमानजी ने कहा कि इसका उपाय एक ही है। जो दवा मैं तुम्हें देना चाहता हूँ, वह दवा कौन-सी है? भगवान की भक्ति ही दवा है।

भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान। ५/२३/०

तुम्हें चाहिए तुम भगवान राम का भजन करो। उन्होंने और भी अनेक शब्द उसके साथ जोड़ लिये – भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान। राम शब्द का अभिप्राय यह था कि जो समस्त प्राणियों के अन्त:करण में विद्यमान हैं। ऐसे राम तुम्हारे हृदय में, अन्तर्मन में, अन्तर्हृदय में, आत्मरूप में विराजमान हैं। उनकी भक्ति करना, तो अपनी ही भक्ति करना है। पर वे जानते थे कि रावण इस भक्ति से प्रसन्न हो जायेगा। कहेगा कि ठीक है, मैं किसी ईश्वर की उपासना नहीं करता, मैं तो अपनी आत्मा की उपासना कर रहा हूँ और आत्मा के नाम पर वह अपने शरीर, अपने क्षुद्र अहंकार को ही अपनी पूजा का विषय बनाएगा। इसलिए हनुमानजी ने यह भी कह दिया कि मैं केवल निर्गुण राम के लिए नहीं कह रहा हूँ, अगला वाक्य था – भजहु राम रघुनायक। जिन राम ने समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी होते हुए भी रघुनायक के रूप में जन्म लिया है, उनकी भक्ति तुम्हें करनी है। रावण कह सकता है कि अगर मैं भक्ति करूँ, तो मेरे पुराने कार्यों पर दृष्टि डाली जायेगी। मैंने क्या किया है, किस प्रकार से दण्डित किया, अपराध किया, तो क्या यह सम्भव है? तो तीसरा शब्द हनुमानजी ने जोड़ दिया, चिन्ता मत करो, वे कृपा के समुद्र हैं। थोड़ा जल हो, तो वह गंदा हो सकता है, पर जहाँ अथाह जलराशि है, वहाँ तो व्यक्ति कुछ भी मलिनता उसमें डाले, वह जल गंदा नहीं होता। वे परम कृपालु हैं, इसलिए तुम्हारे सारे दोष जो हैं, वे विलीन हो जायेंगे। कृपासिन्धु के साथ-साथ भगवान षडैश्वर्य के स्वामी हैं और ऐश्वर्य के प्रति तुम्हारी आसक्ति है, तुम यदि उनका आश्रय लेते हो, तो भगवान होने के नाते वे तुम्हारी आकांक्षाओं और कामनाओं को भी पूर्ण करेंगे। इसी का संकेत करते हुए आगे चलकर उन्होंने कहा –

राम चरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू।। ५/२२/१

उन्होंने कहा कि तुम्हारे रोग के मूल में मोह है। दवा यह है कि तुम भगवान की भक्ति करो। पर एक पथ्य है। वह पथ्य क्या है? – **त्यागहु तम अभिमान।**

कई वैद्य पथ्य के विषय में बड़े निर्दयी होते हैं। वे ऐसा पथ्य बताते हैं कि सुननेवाला निराश हो जाता है। उन्हें लगने लगता है कि इन्होंने तो हमारे लिए कोई वस्तु छोड़ा ही नहीं। हनुमानजी तो इतने उदार वैद्य हैं कि उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें अभिमान छोड़ने के लिए भी नहीं कह रहा हूँ। तब? – त्यागहु तम अभिमान। हनुमानजी कैसे विलक्षण चिकित्सक हैं। उन्होंने कहा कि अभिमान तो समग्र रूप से त्यागने योग्य है, पर मैं तुमसे यह नहीं कहूँगा कि तुम अभिमान को समग्र रूप से छोड़ दो। तुम सात्त्विक अभिमान बनाए रख सकते हो। तुम पूजन करते हो, तुम पाठ करते हो, स्तुति करते हो, ये सारे कार्य तो व्यक्ति सात्त्विक अभिमान के द्वारा ही करता है। तो ठीक है, इन्हें करने के लिए तुम सात्त्विक अभिमान बनाए रखो। तुम राजा हो, शासन करना है। शासन करने के लिए रजोगुण की भी आवश्यकता होती है। तो तुम उस रजोगुण को भी व्यवहार में बनाए रखो, तो कोई आपत्ति नहीं है। पर इतना तो तुम करो। क्या? – त्यागहु तम अभिमान। जो तमोमय अभिमान है, उसका तुम त्याग कर दो।

अब वहाँ पर गोस्वामीजी ने बताया कि जो मोहग्रस्त व्यक्ति होते हैं, वे यदि अभिमानी भी हों, तो उसे अपनी विशेषता समझते हैं। उस रोगी और वैद्य के सम्बन्ध में आप कल्पना करके देखिए कि वैद्य ने जिसे पथ्य बताया हो और रोगी को लगा हो कि वैद्य तो मूर्ख है। यह जो साधारण लोगों के लिये नियम है, वह मुझे बता रहा है? क्या ये नियम मेरे लिए हो सकते हैं? यह अन्यों के लिए कुपथ्य हो सकता है, पर मेरे लिए क्या कोई कुपथ्य होता है? इसलिए गोस्वामीजी ने अगला वाक्य लिखा। क्या?

बोला बिहसि महा अभिमानी।

तुम तमोमय अभिमान को छोड़ने के लिए कह रहे हो? नहीं, नहीं, मैं अभिमानी हूँ और मेरा अभिमान इसलिए है कि मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। रावण जिस तरह से उस चिकित्सक पर व्यंग्य करता हुआ, हँसी उड़ाता हुआ कहता है –

बोला बिहसि महा अभिमानी।
मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी।। ५/२३/२

तुम रावण के गुरु के रूप में अपने को प्रस्तुत कर रहो हो? क्या तुम समझते हो कि तुम मेरे गुरु बनकर मुझे उपदेश दे सकते हो? सचमुच जो रोगग्रस्त व्यक्ति होता है, वह कहीं न-कहीं अपने को अपवाद मान लेता है। यही वृत्ति धृतराष्ट्र की थी। **(क्रमशः)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (४१)

(आठवाँ अध्याय ८/४)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

एतत्ते पूर्वदेयं मामिदमद्य भविष्यति।

इति सा पणते मूल्यं तन्मध्ये क्रयिकेन च।।१८।।

– उसी बीच वह ग्राहकों से हिसाब-किताब कर रही है, कि तुम्हारा पहले का इतना बाकी है और आज का इतना रुपया हुआ।

सर्वकर्माणि सा त्वित्थं सम्पादयति यद्यपि।

सदेवास्ते मनस्तस्या निबद्धं मूषलं प्रति।।१९।।

– इस प्रकार वह सब कार्य कर रही है, किन्तु उसका मन सदा ढेंकी के मूसल पर ही रहता है।

मूषले पतिते तस्मिन् सम्यगवहितं तया।

चिराय वै करस्तस्या विचूर्णितो भविष्यति।।२०।।

– वह ठीक से जानती है कि ढेंकी के हाथ पर गिर जाने से उसका हाथ चूर्ण हो जायेगा।

संसारे कुरु कर्मैवं मूषले रमणी यथा।

सन्निधाय मनस्तस्मिन्नन्यर्थस्त्वन्यथा भवेत।।२१।।

– उसी प्रकार संसार में रहकर ढेंकी और महिला की तरह सभी कार्य करो, किन्तु मन उनके उपर (भगवान पर) रखो। उन्हें छोड़ने पर सब अनर्थ हो जायेगा।

उषित्वा यस्तु संसारे साधनं कर्तुमर्हति।

यथार्थः साधको वीरः स ह्यत्र परिगण्यते।।२२।।

– संसार में रहकर जो साधना करते हैं, वे ही सच्चे वीर साधक हैं।

यथेप्सितं याति यथेच्छदृष्टिः

शूरो यथा मूर्ध्नि निधाय भारम्।

यो वीर सन्तो वसतीशदृष्टिः

संसारभारञ्च तथैव धृत्वा।।२३।।

– वीर पुरुष जैसे सिर पर बोझ लेकर जिधर चाहे उधर देख सकता है, वैसे ही वीर साधक इस संसार में कन्धे पर बोझ लेकर भगवान की ओर देखता रहता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५५० का शेष भाग

बेहतर बनाने के तीन चीजें आवश्यक हैं –

१. सुख-सुविधा और विलासितापूर्ण परिवेश (Comfort Zone) से धीरे-धीरे बाहर निकलें।

२. अन्त तक यानी लक्ष्य प्राप्ति तक, लक्ष्य से न तो विमुख हों, न ही लक्ष्य को छोड़ें।

३. स्वयं को चुनौती दें और चुनौतियों से प्रेरित हों।

इस लेख में स्वामी विवेकानन्द के सन्देश, बेंजामिन फ्रैंकलिन, थॉमस अल्वा एडिसन और क्रिस कैर के प्रेरणादायक जीवन का अध्ययन किया। हमने प्रेरणा (Inspiration) और दृढ़ संकल्प (Determination) के महत्त्वपूर्ण उदाहरणों के बारे में विमर्श किया, जिससे महान लोगों ने चुनौतियों का सामना करके जीवन में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए प्रेरणा ली।

प्रेरणादायी पुस्तकों के अध्ययन से और विश्व के महान् व्यक्तित्व के जीवन चरित्र के अध्ययन से युवावर्ग प्रेरणा (Inspiration) प्राप्त करके अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। ○○○

कविता

परमा प्रकृति सारदा देवी

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

परमा प्रकृति सारदा देवी, तेरा गीत सदा मैं गाऊँ ।
तेरे पूत प्रेम को पाकर, तव चरणों में बलि बलि जाऊँ ।।
तेरे दिव्य सौम्य मूरत को, अपने हिय में सद बसाऊँ ।
जग के सब व्यापार भुलाकर, तुझमें ही नित ध्यान लगाऊँ।।
प्रभामयी माँ परम ज्ञेय तुम, तेरा ज्ञान सदा मैं पाऊँ ।
ब्रह्ममयी चैतन्यदायिनी, तुमको कभी न मैं बिसराऊँ ।।
सुधास्वरूपिणि विद्यारूपिणि, मैं मन में यह आस लगाऊँ।
तेरी महिमा गाते-गाते, भवसागर से मैं तर जाऊँ ।।

बाबा गुरु घासीदास जयन्ती विशेष

मनखे-मनखे एक समान के संदेशक बाबा गुरु घासीदास

संजीव खुदशाह

छत्तीसगढ़ के महान एवं सुप्रसिद्ध सन्त बाबा गुरु घासीदास का जन्म छत्तीसगढ़ के गिरौधपुरी नामक गाँव में १७५६ में हुआ था। बाबा गुरु घासीदास ने जो संदेश दिया, उसको समझने के लिए हमें उनके जन्म के समय की परिस्थितियों को समझना होगा।

वह एक ऐसा समय था, जब छत्तीसगढ़ में मराठाओं का शासन था, शोषण का बोलबाला था, जातिवाद ऊँच-नीच चरम पर था। ऐसी स्थिति में बाबा का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ। वे आम लोगों की तरह जीवन जी रहे थे, लेकिन लगान, जमींदारी, टैक्स आदि से ग्रामीण जीवन आर्थिक और सामाजिक रूप से निर्बल हो चुका था। आम जनता भूख-प्यास से परेशान थी। इस कारण वे बहुत व्यथित थे। कहा जाता है कि उन्होंने तप किया। जिसे हम तपस्या या अध्ययन या चिन्तन भी कह सकते हैं। वे घर-परिवार छोड़कर गिरौधपुरी से सोनाखान के जंगल छाता पहाड़ में ६ महीने तक चिन्तन-मनन करते रहे। तप करने के पश्चात् उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले, जिस आत्मज्ञान की उन्हें अनुभूति हुई, उसका संदेश, उस सत्य के मार्ग पर चलने का संदेश उन्होंने लोगों को दिया। वह आगे चलकर सतनाम कहलाया।

आज बाबा गुरु घासीदास की वाणियाँ लोगों के बीच प्रचलित हैं, वे श्रुति-परम्परा से आई हैं। उनकी जीवनी पढ़ने पर ज्ञात होता है कि उनके जीवन पर गुरु रैदास, सन्त कबीर, गुरु नानक, जैसे निर्गुण धारा के सन्तों का प्रभाव रहा। इसलिए बाबा गुरु घासीदास को भी निर्गुण परम्परा का सन्त माना जाता है। उनके संदेशों में बुद्ध का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखता है। उन्होंने जो सात शिक्षाएँ दी हैं, वे शिक्षाएँ पंचशील में भी मिलती हैं।

आइए, जानते हैं कि वे सात शिक्षाएँ क्या हैं?

१. सतनाम पर विश्वास करना

२. जीव-हत्या नहीं करना

३. मांसाहार नहीं करना

४. चोरी-जुआ से दूर रहना

५. नशा सेवन नहीं करना

६. जाति-पाति के प्रपंच में नहीं पड़ना

७. व्यभिचार नहीं करना

कुछ विद्वान मानते हैं कि गुरु घासीदास की शिक्षायें सीमित नहीं थीं, इनमें और भी शिक्षाएँ शामिल थीं। श्रुति-परम्परा पर आधारित सतनामी समाज में बहुत सारी शिक्षाओं पर विश्वास किया जाता है। गुरु घासीदास बाबा ने

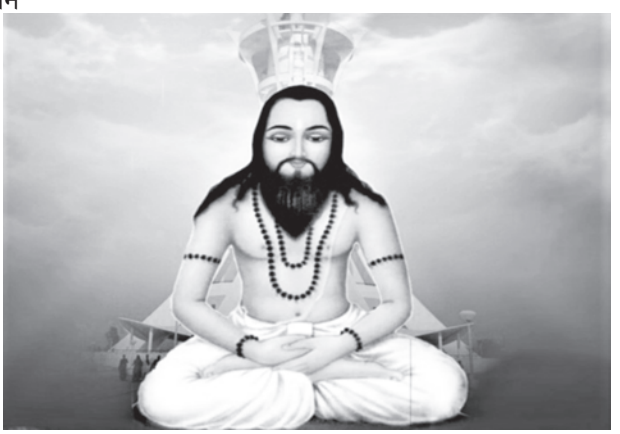

विश्व की जाति-पाति से दूर 'मनखे-मनखे एक समान' का संदेश दिया है। वे कहते हैं कि अन्धश्रद्धा और पाखण्ड में डूबा समाज गर्त में जाता है, चाहे वह अपने को कितना ही महान समझे। इसलिए इन सब से बाहर निकलो और सत्य पर चलो। उनके पिताजी श्री महंगूदास एक वैद्य थे। इस कारण गुरु घासीदास बाबा ने उनसे यह गुण सीखा और वे भी एक प्रसिद्ध वैद्य बन गए। वे जड़ी-बूटी पर आधारित चिकित्सा करते थे।

वे एक वैज्ञानिक एवं तर्कवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। उन्होंने दबी-कुचली जनता को संगठित होने एवं अत्याचार से लड़ने का संदेश दिया। कहा जाता है कि उनके इस संदेश

से प्रभावित होकर बहुत सारी अन्य जातियों के लोग बाबा गुरु घासीदास के प्रभाव में आये। वे सतनाम पंथ को मानने लगे। बाबा गुरु घासीदास की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई थी। कुछ अंग्रेज लेखकों ने बाबा गुरु घासीदास का उल्लेख अपनी पुस्तकों में किया है।

तीर्थ-यात्रा – सर्वोत्तम स्वरूपजी अपनी पुस्तक 'गुरु घासीदास और उनका सतनाम आन्दोलन' में उल्लेख करते हैं कि बाबा गुरु घासीदास ने भुवनेश्वर स्थित जगन्नाथ मन्दिर की महिमा सुनकर तीर्थ-यात्रा की योजना बनाई, लेकिन मन्दिरों में उनके साथ भेद-भाव हुआ, जिससे बाबा व्यथित हो गये। उन्होंने उत्तर भारत के लगभग सभी मन्दिरों में तीर्थ-यात्रा की। सभी जगहों पर यह ज्ञात हुआ कि शुद्रों के साथ भेद-भाव हो रहा है। बाबा ने एक ऐसे संसार की कल्पना की, जहाँ सभी मानव बराबर हो। एक-दूसरे में भेद न हो। उन्होंने पूरे संसार को यही संदेश दिया। बाबा गुरु घासीदास की शिक्षाओं को पन्थी गीत एवं नृत्य के माध्यम से स्मरण किया जाता है, जो अपनी विशेष शैली के लिए पूरे देश में प्रसिद्ध है। पन्थी गीत की एक बानगी यहाँ देखिये –

मंदिरवा म का करे जइबो,
अपन घट के देव ल मनइबों।
पथरा के देवता ह हीलत ए न डोलत,
ए अपन मन ल काबर भरमईबो।
मंदिरवा म का करे जइबो।

जैत खम्भ की स्थापना – सर्वोत्तम स्वरूप जी लिखते हैं कि गुरु घासीदास जी की जहाँ रावटी लगती थी, वहाँ सबसे पहले छोटे रूप में पतली लकड़ी का खम्भा और उसमें छोटा-सा झंडा गाड़कर अपनी विजय पताका लहराते थे। इसी का बड़ा रूप सर्वप्रथम तेलासी में, जहाँ मन्दिर बना है, उसके सामने जैतखम्भ गड़ाया गया है। बाबा गुरु घासीदास साहेब ने अपने जीवन काल में इक्कीस संदेशों का प्रतीक २१ फीट का खम्भा (२१ हाथ) अर्थात् ५ तत्त्व, ३ गुण, १३ सद्गुण का खम्भा गड़वाया था, जो कि २१ सद्गुणों का प्रतीक है। सार रूप में कहा जाय, तो जैतखम्भ २१ दुर्गुणों पर विजय पाने का प्रतीक है, जो कि इस प्रकार है – १. काम, २. क्रोध, ३. लोभ, ४. मोह, ५. झूठ, ६. मत्सर, ७. द्वेष, ८. ईर्ष्या, ९. अभिमान, १०. छल, ११. कपट, १२. बैर-विरोध, १३. मांसाहार विरोध, १४. शराबखोरी विरोध, १५. गांजा विरोध, भांग, बीड़ी, तम्बाकू विरोध, १६. जुआ खेलना विरोध, १७. निकम्मापन विरोध १८. चोरी न करना, १९. ठगी न करना, २०. बेईमानी न करना, २१. स्वार्थ न साधना। ○○○

(नवभारत १७ दिसम्बर, २०२३ से साभार)

पृष्ठ ५५४ का शेष भाग

आदि लिङ्गों (लक्षणों) से पुरुष शरीर के भीतर परिच्छिन्न जैसा अनुभूत होता है। इसीलिये कहा गया है – 'हे प्रियदर्शन ! वह पुरुष इस शरीर के भीतर है।'

– न पुनः आकाश-कारणः सन्-कुण्ड-बदरवत्-शरीर-परिच्छिन्न इति मनसा अपि इच्छति वक्तुं मूढो अपि किमुत प्रमाणभूता श्रुतिः।।२।। (६१)

नहीं तो, आकाश का भी कारण होकर वह कुण्डी में बेर के समान, शरीर में परिच्छिन्न है, ऐसा कोई मूर्ख भी कहने की मन में इच्छा नहीं कर सकता, फिर प्रमाण-स्वरूप श्रुति की तो बात ही क्या है?।।६/२।।

* * *

भाष्य – यस्मिन् एताः षोडश कलाः प्रभवन्ति इति उक्तं पुरुष-विशेषणार्थं कलानां प्रभवः स च अन्यार्थो अपि श्रुतः केन क्रमेण स्याद्-इति अतः इदम् उच्यते – चेतन-पूर्विका च सृष्टिः इति एवम् अर्थं च।

भाष्यार्थ – पिछले मंत्र में यह कहा जा चुका है, 'जिसमें ये सोलह कलाएँ उत्पन्न होती हैं' – यह बात इस उत्पत्ति का क्रम बताने के लिये नहीं, अपितु पुरुष की विशेषता बताने के लिए कही गई है। अब यह बताते हैं कि किस क्रम से इन (कलाओं) की (सांख्य के समान जड़ से नहीं, बल्कि) चैतन्य से उत्पत्ति होती है – **(क्रमशः)**

मन्त्र जपने से देह-शुद्धि होती है। भगवान का मन्त्र जपकर मनुष्य पवित्र होता है। कम से कम देह-शुद्धि के लिए मन्त्र की आवश्यकता है।

अगर तुम सत्कर्म करोगे, तो वह तुम्हारे पहले किये गये बुरे कर्मों को काट देगा। ध्यान, जप और आध्यात्मिक विचारों से पुराने पाप कट जाते हैं।

– श्रीमाँ सारदा देवी

पंजाबी साहित्यिक परम्परा में 'आदिग्रन्थ' का स्थान

ए.पी.एन. पंकज, चण्डीगढ़

(गतांक से आगे)

आदि ग्रंथ की लोक-परम्परा

आदि ग्रंथ में लोक-परम्परा की अत्यन्त मधुर सुगन्ध है। इसमें उपलब्ध लोक-काव्य, लोक-गीतों का स्वरूप, शैली और प्रकृति प्रस्तुत निबन्ध का विषय नहीं है। हम यहाँ इतना ही कहना चाहेंगे कि मौखिक साहित्य-विधा मूलरूप में लोक-परम्परा की पूर्ववर्ती भी है तथा उत्तराधिकारी भी। प्राचीन काल से ही इस परम्परा के लिये पंजाब एक-उर्वर भूमि रही है। आदिग्रंथ में भी इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। डॉ. मोहिन्दर कौर गिल लिखती हैं,

''गुरुबाणी के साहित्य ने पहली बार इस प्राचीन लोक-परम्परा को लिखित रूप देकर इसे प्रामाणिकता प्रदान की है। गुरुबाणी के साहित्य के माध्यम से लोक-परम्परा के प्रभाव को पहली बार लिखित रूप में प्रचारित किया गया है। लोक साहित्य की अनेक विधाओं – मिथकों, जनश्रुतियों, उपाख्यानों, विधि-निषेधों, धारणाओं तथा गीतों इत्यादि को गुरमुखी में पहली बार लिपिबद्ध किया गया है।''[२७]

विवाह और मृत्यु के समय गाई जानेवाली बाणी का उल्लेख हम पहले कर आए हैं। अन्य अवसरों, जैसे जन्म और विवाह-पूर्व रस्मों के लिये भी ग्रंथ में लोक-संस्कृति पर आधारित पर्याप्त सामग्री है – सोहिले, घोड़ियाँ, अंजुलियाँ, मुंदावनियाँ इत्यादि। उस युग में जब यात्राएँ कठिन और जोखिम भरी होती थीं, यात्रियों की थकावट के अहसास, तनाव और सुस्ती को दूर करने के लिए रची गई बाणी यहाँ उपलब्ध है। तिथियों, वारों, महीनों और ऋतुओं के नामों और उनकी संख्या से परिचित करानेवाले गीत भी मिलते हैं। ये सब तो लोक-परम्परा के स्वरों में निबद्ध हैं ही, बिरहड़े भी हैं, जिनमें प्रियतम के विछोह से उत्पन्न व्यथा प्रतिबिम्बित होती है। विभिन्न ऋतुओं के त्यौहारों का भी प्राचीन शास्त्रीय लोक-विधा में वर्णन है। कुचज्जी और सुचज्जी – फूहड़ और चतुर जैसे स्वभाव की स्त्रियों का भी उल्लेख है। इन सभी लोक-विधाओं का प्रतीकात्मक प्रयोग रचनाकारों ने अपनी आध्यात्मिक अवस्थाओं हर्षातिरेक, विरह-व्यथा, प्रसन्नता, चिन्ता, पश्चाताप इत्यादि – की अभिव्यक्ति के लिए किया है। कुलटा (दोहागिनि) की दुर्दशा और पतिप्रिया (सुहागिनि) के दुर्भाग्य और सौभाग्य को लाक्षणिक बनाकर मन्मुख (ईश्वरविमुख) तथा गुरुमुख (ईश्वरोन्मुख अथवा गुरु के प्रति श्रद्धावान) के दुर्भाग्य और सौभाग्य का वर्णन किया गया है। वर्षा ऋतु के आगमन पर श्रावण मास में नववधू का हृदय प्रियतम के चरण कमल में स्वयं को समर्पित करने को ललकता है। सत्य के रंग में उसका तन-मन भीगता है। प्रेमास्पद परमेश्वर के नाम का आश्रय ग्रहण करने से उसे चैन प्राप्त होता है –

सावणि सरसी कामणी चरण कमल सिउ पिआरू।।
मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारू।।[२८]

आदि ग्रंथ की भाषा

इस विषय में हमें एन्थोनी डिमैलो की उक्ति स्मरण आती है, ''विद्वान के शब्दों को समझना पड़ता है। ऋषि - मास्टर – को समझना नहीं, सुनना होता है। सुनना, जैसे हम वृक्षों के बीच में से गाती-गुजरती हवा को सुनते हैं, जैसे हम नदी की कलकल को, चिड़िया की चहक को सुनते हैं। उस ध्वनि को यदि हम सुन पाएँ, तो हृदय में जो हिलोर जागती है, वह शब्दों से परे है।''[२९]

ऋषियों, गुरुओं, भक्तों की वाणी के सम्बन्ध में यह उक्ति सर्वथा सत्य है। तथापि एक विद्वान का आग्रह तो शब्द, अर्थ, भाषा, बौद्धिक-विश्लेषण के प्रति रहता ही है। इसलिए भाषा, शब्द-विन्यास, व्याकरण, अर्थ इत्यादि बीच में आते हैं। आदिग्रंथ की भाषा का विस्तृत अध्ययन अपने आप में

एक स्वतंत्र विषय है। यहाँ हम अपने विषय से जुड़े सन्दर्भ में इसकी संक्षिप्त चर्चा ही करेंगे।

पंजाबी भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास की कथा अनिवार्य रूप से संस्कृत तथा प्राकृत की सजातीय बोलियों के उद्‌भव और विकास के साथ जुड़ी हुई है। अब यह बात प्राय: स्वीकृत ही है कि क्लासिकल संस्कृत की पूर्वज वैदिक भाषा कई शताब्दियों तक लोकभाषा के रूप में प्रयोग होते-होते ही विकसित हुई थी। वैदिक ऋचाएँ भी लम्बी समयावधि के अन्तराल में रची जाती रही थीं। यह बात वेदों की भाषा में क्रमश: आते हुए अन्तर से स्पष्ट होती है। उधर क्लासिकल संस्कृत जहाँ निश्चित रूप से आरम्भ में सामान्य जन की भाषा रही होगी, वहाँ धीरे-धीरे यह सम्भ्रान्त वर्ग की भाषा बनती चली गई। यद्यपि इसका सम्पर्क सामान्य लोगों के साथ भी न्यूनाधिक रूप में बना रहा। पाणिनि (ई. पू. चौथी शताब्दी) तथा अन्य वैयाकरणों द्वारा प्रस्थापित कठिन नियमों के चलते तथा साहित्य के विकास के साथ भाषा और अभिव्यक्ति अधिकाधिक औपचारिक होती गई। टी. बरो का कहना है – ''यद्यपि संस्कृत तथा सामान्य जन की भाषा के बीच दूरी प्रगामी रूप से बढ़ती रही, तथापि इससे संस्कृत पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा। इतना ही नहीं, इसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उदाहरणार्थ, मौर्य काल में प्रशासन की भाषा ... प्राकृत थी, पर धीरे-धीरे प्राकृत का स्थान संस्कृत लेती चली गई, यहाँ तक कि अन्तत: एकमात्र संस्कृत का ही प्रयोग होने लग गया। ऐसा ही परिवर्तन बौद्धों में भी हुआ। थेरावाद की पाण्डुलिपियाँ .... पालि में सुरक्षित हैं, परन्तु ईस्वी युग के प्रारम्भ तक उत्तरी भारत के बौद्धों ने संस्कृत को अपना लिया था ... देर से ही सही, बौद्धों का अनुकरण जैनों ने भी किया और वे भी प्राकृत को छोड़ संस्कृत में ही अपनी रचनाएँ करने लगे। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि वैदिक युग के समाप्त होने के बाद और मुस्लिम-युग आरम्भ होने से पहले के मध्यवर्ती काल में लगभग ६०० वर्षों तक संस्कृत का ऐकान्तिक और व्यापक वर्चस्व बना रहा।[३०] आधुनिक भारोपीय* भाषाओं का प्रचलन १००० ईस्वी के पश्चात् आरम्भ हुआ। (१६५)''

* भारतीय-यूरोपीय

मोटे तौर पर उपरोक्त विचार से सहमति व्यक्त करते हुए कृष्ण कृपलानी ने कहा है कि परिष्कृत संस्कृत भाषा सहित उत्तर भारत की उन भाषाओं की, जो मध्य-भारोपीय बोलियों से विकसित हुई थीं, स्वतन्त्र रूप से स्वीकृति सम्भवत: ग्यारहवीं शताब्दी तक भी नहीं हुई थी। (३०५) पंजाबी भाषा का मूल इन्हीं भाषाओं और बोलियों में है।

पंजाबी साहित्य की आदरणीय साहित्यिक विभूति भाई साहिब भाई वीर सिंह ने पंजाबी भाषा की उत्पत्ति और विकास के संबंध में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ, हम उन्हें सार रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं[३१] –

– जिस भाषा की पहचान आज पंजाबी के रूप में होती है, उसे अब्दुल करीम, हाफ़िज़ मुअज़्ज़ज़ दीन, मौलवी मुहम्मद मुस्लिम तथा इमामुद्दीन जैसे मुस्लिम कवि हिन्दी, हिन्दू अथवा हिन्दवी कहते थे। इसे सबसे पहले पंजाबी कहनेवाले हाफ़िज़ बरखुरदार (सन् १६७०ई.) थे।

– वैदिक युग में पंजाब को सप्तसिंधु के नाम से जाना जाता था। ईरानी इसे हप्त-हैन्दु कहते थे। परिवर्तन की प्रक्रिया में यह शब्द हिन्द हो गया। तब भी इस शब्द से पंजाब का ही बोध होता था। परन्तु जब मुसलमान पंजाब की सीमा से आगे बढ़ गए और उन्होंने भारत के अन्य भागों पर भी आधिपत्य स्थापित कर लिया, तब उनके द्वारा अधिकृत पूरे भूभाग को हिन्द कहा जाने लगा।[३२]

– महाराजा रंजीत सिंह के शासन काल में जब पंजाब ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर लिया, तब 'हिन्द' और 'पंजाब' के अर्थ अलग हो गए।

– अंग्रेजी शासन के दौरान पंजाब की भाषा को हिन्दी कहने का प्रचलन समाप्त हो गया। इस भाषा को हिन्दी से अलग एक स्वतंत्र भाषा की मान्यता प्राप्त हो गई।

– पूर्वी भारत की भाषाओं के विपरीत पंजाबी में संस्कृत अक्षरों का उच्चारण (अपेक्षाकृत अधिक) सुरक्षित रहा है। ध्वनि की दृष्टि से भी पंजाबी शब्दों का उच्चारण संस्कृत के अधिक निकट है।

– जिस भाषा को आज हम पंजाबी कहते हैं, वह (केवल) देहाती भाषा नहीं है। वैदिक युग से लेकर आज तक आध्यात्मिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक मूल्यों के सतत प्रवाह सहित पंजाब के निरक्षर जन-सामान्य तक की चेतना भी इसे अनुप्राणित करती रही है, इससे प्रेरित होती रही है।

– पंजाबी पंजाब की भाषा है। इस पर किसी धर्म-सम्प्रदाय का एकाधिकार नहीं है। मुसलमान, हिन्दू, ईसाई और सिख विद्वानों ने इसकी समृद्धि में योगदान दिया है। यह सच है कि मुस्लिम कवियों की रचनाओं में इस्लामी परम्परा और प्रकृति की प्रधानता और अरबी-फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य है, पर इतने मात्र से उनकी भाषा अलग नहीं हो जाती। वह पंजाबी ही है।

गुरु ग्रंथ साहिब न केवल पंजाबी भाषा के पाँच सौ वर्ष के विकास का साक्षी है, यह इसका पुरोगामी निर्माता भी है। मोहिन्दर कौर गिल के अनुसार आदि श्री गुरुग्रंथ साहिब न केवल हमारा आदरणीय ग्रंथ है, यह पंजाबी साहित्य की मौलिक, प्रामाणिक संहिता भी है। इसने पंजाबी साहित्य को उसका परिचायक चेहरा प्रदान किया है, जिसमें साहित्य के

शास्त्रीय-सिद्धान्त का पालन किया गया है।[३३]

महान सूफ़ी सन्त शेख़फ़रीद से लेकर दशम गुरु तक, गुरुग्रंथ साहिब को न केवल विभिन्न धर्मों तथा संप्रदायों की विभूतियों के विचारों, उद्‌गारों और भावों की सरिताओं ने एक ऐसे अद्‌भुत संगम का स्वरूप प्रदान किया है, जिसमें संस्कृत (प्रधानत: तद्भव), सधुक्कड़ी, प्राकृत, व्रज, अवधी, खड़ी बोली, मुल्तानी (लाहिंदी), सिंधी, फ़ारसी और अरबी शब्दों को तरंगों और बुदबुदों को चढ़ते-उतराते अनुभव किया जा सकता है।[३४] अपितु आश्चर्य की बात तो यह है कि इतनी विविधता के बावजूद बाणी के संवेदनशील पाठकों को इसका श्रवण या पाठ करते समय किसी भी प्रकार के बेसुरेपन का अनुभव न होकर आनन्दप्रद समरसता की अनुभूति होती है। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो इस के पाठ में हम प्रार्थनामय मौन का, एक सौम्य शान्ति का, भी अनुभव करते हैं। इस प्रकार गुरु अर्जन की अन्त:प्रज्ञा और दिव्य दृष्टि के प्रसाद स्वरूप इसके पृष्ठों का अवलोकन करते समय हमें भारतीय संस्कृति के सर्वसमावेशी स्वरूप का बार-बार स्मरण होता है।

गुरुमुखी लिपि

इस सन्दर्भ में गुरुमुखी लिपि, जिसमें पूरा ग्रंथ लिखा गया है, के महत्त्व को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। जैसाकि हम पहले कह आए हैं, मूल रूप में बाणी विभिन्न अवसरों और समयावधियों में या तो मौखिक से प्राप्त हुई थी या विभिन्न भाषाओं-लिपियों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई थी। गुरुमुखी लिपि ने इसे आवश्यक सुसंबद्धता प्रदान करने में महती भूमिका निभाई है।

ग्रंथ साहिब का दार्शनिक दृष्टिकोण

भारतीय परम्परा में दर्शन और धर्म की अभिव्यक्ति के लिए कविता का आश्रय लिया जाना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। वैदिक ऋचाओं और उपनिषदों के युग से ही अनवरत रूप से गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को कविता की मधुरता में प्रस्तुत किया जाता रहा है। भगवद्‌गीता, योगवासिष्ठ, अगणित पौराणिक अंशों के साथ-साथ बौद्ध और जैन दार्शनिकों के गहन और जटिल सिद्धान्तों तथा विचारों को, उपमाओं और अलंकारों से सम्पन्न, काव्य का आकर्षक परिधान पहनाया गया है। भारतीय साहित्य के आचार्यों ने काव्य के आनन्द को ब्रह्मानन्द-सहोदर कह कर उसे आध्यात्मिक आनन्द के समकक्ष रखा है। ऐसे में आध्यात्मिक आनन्द और काव्यानन्द एक-दूसरे में मिलकर प्रवाहित हों, तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है। आदि ग्रन्थ इस परम्परा का ही अभिन्न अंग है। इसमें भाव और बुद्धि, हृदय और मस्तिष्क, ऐसे घुल-मिल गए हैं कि दोनों को अलग कर के देख पाना सम्भव नहीं है।

यद्यपि आदिग्रंथ कई गुरुओं और भगतों की बाणी का संग्रह है, इसलिए इसमें भिन्न विचार सरणियों तथा शैलियों का स्वाभाविक सन्दर्शन है, तथापि इसमें मूल रूप में गुरुनानक के दृष्टिकोण की ही प्रधानता है। स्वयं नानक कबीर से काफी सीमा तक प्रभावित रहे थे।[३५] प्रारम्भिक उपनिषदों की भाँति ही यह दर्शन बुद्धि-प्रधान न होकर अन्त:प्रज्ञा तथा अनुभूति से भावित है। इसके साथ-साथ तत्कालीन मध्ययुगीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी इस पर दिखाई देता है। गुरुग्रंथ के रचनाकार

उस भक्ति-आन्दोलन के अंग तो थे ही, जो द्रविड़-देश से चलकर उत्तर भारत में व्याप्त हो गया था, उन्होंने इस आन्दोलन को अपना योगदान भी प्रदान किया था।

संक्षेप में, सरल शब्दों में कहें, तो आदिग्रंथ के अनुसार ईश्वर एक है। वही शाश्वत सत्य है। एक ओंकार। मानव द्वारा बोधगम्य नहीं है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्व-शक्तिमान है। वह स्रष्टा, पालनकर्ता, संहारकर्ता है। वह कृपालु और करुणामय है। अपने जनों-भक्तों से प्रेम करता है। यद्यपि ये सारे विशेषण अथवा नाम उसके हैं, तथापि वह निरुपाधि तथा निर्विशेष है। वह निरंकार (निराकार) है। उसका नाम, ओंकार ही सत्य है, पर उसे राम, राजाराम, रघुनाथ, नारायण, हरि, शार्ङ्गपाणि, गोबिन्द (गोविन्द), गोपालराय, मुरारी, बीठल, बिसुंभर (विश्वम्भर), अल्लाह और ख़ुदा आदि अनेक नामों से भी संबोधित किया जाता है। इन नामों में कई ऐसे हैं, जिनमें साकार और सगुण ईश्वर का भी स्मरण होता है। ये नाम अनन्तकाल से भारत के सामूहिक और व्यक्तिगत चिन्तन और स्मरण के अंगों के रूप में चले आ रहे हैं। उस अनिर्वचनीय और अविज्ञेय परमेश्वर का साक्षात्कार तभी होता है, जब तक भक्त पर कृपा – नदरि – करता है। गुरु के पथ-प्रदर्शन में उसकी कृपा की अनुभूति होती है। परमात्मा ही आदि गुरु है।

ईश्वर की प्राप्ति मन्दिर या मस्जिद में, मूर्तिपूजा या सिजदाह करने से, वेद और कुरान का पाठ मात्र नियम-निर्वाह के लिये करने से, सम्भव नहीं है। वह अन्तर्यामी है, घट-घट वासी है। उसे पाने के लिये लोग अंधे होकर ऐसे गुरुओं के जाल में फंस जाते हैं, जो स्वयं तो अज्ञानी हैं ही, अपने अनुयायियों को भी अविद्या के अंधकूप में डाल देते हैं। इस प्रकार वे अनन्तकाल तक जन्म-मृत्यु के कष्टप्रद चक्र में फँसे रहते हैं। नाम सिमरन (स्मरण) और नाम-जप के द्वारा ही मुक्ति सम्भव है। गुरु के शबद द्वारा ही ईश्वर स्वयं को भक्त के अन्तस् में प्रकट करता है। निस्संदेह, जैसाकि श्रीरामकृष्ण भी कहते हैं, उसकी प्राप्ति के लिये आत्यन्तिक व्याकुलता आवश्यक है। 'आखा जीवा विसरै मर जावा' – उसका नाम स्मरण करूँ, तो जीवित हूँ, बिसर जाए, तो मैं मृत तुल्य हूँ।[३७]

माया का अर्थ संसार का मिथ्यात्व नहीं है। परन्तु सांसारिक मूल्य – प्रभुता, संपत्ति, महल, मोती, पत्नी-पति – सब 'कूड़' अर्थात् मिथ्या हैं, भ्रम हैं। जब तक जीवन उनसे विमुख होकर, 'गुरमुख' या ईश्वरोन्मुख नहीं होता, वह आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।

सिख पंथ में 'हुकम' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ईश्वरीय आदेश, ईश्वरीय इच्छा। हुकम आज्ञा भी है तथा सामञ्जस्य भी, जिसके अनुसार संसार परिचालित होता है। मनुष्य के लिये आवश्यक है कि वह इस हुकम को शिरोधार्य करे, इसे 'भाणा' मान कर स्वीकार करे। नाम सिमरन तथा नदरि/नज़र – ईश्वर की कृपा दृष्टि – से इस सामञ्जस्य और आनन्द की उपलब्धि होती है।

आदिग्रंथ का काव्य तथा उसका दर्शन सहज रूप से 'सूत्र में मणियों' की भाँति एक-दूसरे में मिले हुए हैं। वे दोनों सिख को बौद्धिक रूप से उन्नत, भावनात्मक रूप से प्रसन्न तथा गुरुकृपा से मुक्ति प्रदान करते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तों, कवियों, विचारकों और अध्यात्म के जिसासुओं को इसके शब्द-कोश, अर्थ-भण्डार, सुर-ताल तथा दिव्यज्ञान की वांछित प्रेरणा तथा दिशा प्राप्त होती आई है। संस्कृत में 'कवि' शब्द का अर्थ मात्र कविता करनेवाला नहीं है। कवि को ऋषि, मनीषी और सर्वज्ञ, ईश्वरतुल्य कहा गया है। ग्रंथ के रचनाकार 'कवि' की इसी परिभाषा को चरितार्थ करते हैं।

आदिग्रंथ में मेरे प्रिय अनेक अंशों में से निम्नलिखित एक अंश के साथ मैं इस निबंध का उपसंहार करना चाहूँगा। इस आत्मपरक उद्धरण के लिए क्षमायाचना करते हुए यह भी कहना चाहूँगा कि इसमें गुरुनानक के दार्शनिक मुहावरे तथा कवित्व की उत्कृष्ट कल्पनाशीलता की सुन्दर झलक मिलती है –

हम जेर जिमी दुनिया पीरा मसाइका राइआ।।
मेरबदि बादिसाह अफजू खुदाइआ।।
एक तू ही एक तु ही।।१।। मः १।।
न देव दानवा नरा।। न सिध साधिका धरा।।
असति एक दिगरिकुई। एक तुई एक तुई।।२।।मः १।।
न दादे दिहंद आदमी।। नसपत जेर जिनी।।
असति एक दिगरि कुई।। एक तुई एक तुई।।३।।मनः १।
न सूर ससि मंडलो।। न सपत दीप नह जलो।।
अंन पउण थिरू न कुई। एकु तुई एकु तुई।।४।।मनः १।।
न रिजकु दसत आ कसे।। हमारा एकु आस बसे।।
असति एक दिगर कुई।एक तुई एकु तुई।।५।। मनः१।।

प रंदए न गिराह जर।। दरखत आब आसकर।।
दिहंद सुई।। एक दुई एक तुई।।६।। मः१।।
नानक लिलारि लिखिआ सोइ।। मेटिन साकै कोइ।।
कला धरै हिरै सुई।। एकु तुई एकु तई।।७।।[३८]

अन्त में गुरु और शिष्य, पैगंबर, राजा और बादशाह, सब पृथ्वी के नीचे समा जाएँगे। शेष ईश्वर ही रहेगा। बस तुम्हीं हो, बस एकमात्र तुम्हीं हो। न देवता, न राक्षस, न मनुष्य, न सिद्ध, न साधक, कोई नहीं रहेगा। केवल ईश्वर ही रहेगा। तुम्हीं बस एक तुम्हीं हो। न्याय करनेवाले नहीं रहेंगे। सातों पाताल भी नहीं रहेंगे। केवल तुम्हीं और कोई शेष नहीं रहेगा। तुम्हीं, बस केवल तुम्हीं रहोगे। सूरज नहीं होगा, न चांद, न तारों का झुरमुट ही। सात समंदर नहीं रहेंगे, न ही महाद्वीप। सदा के लिए न अन्न रहेगा, न वायु। तुम्हीं हो, बस एक तुम्हीं हो। उसके सिवा रोज़ी-रोटी देने वाला कौन है? उसी पर हमारी आस है। बस, वही रहनेवाला है। तुम्हीं हो, बस, एक तुम्हीं हो। पक्षी अपने लिए अन्न-पानी का संचय नहीं करते। वनों के वृक्षों पर और प्राकृतिक ताल-तलैया पर आश्रित रहते हैं। परमात्मा ही उनके निर्वाह की व्यवस्था करता है। तुम्हीं हो, बस एक तुम्हीं हो।

नानक कहते हैं, वही होगा जो माथे पर लिखा है। वही शक्ति देता है, वही लेता है। तुम्हीं हो, एकमात्र तुम्हीं हो।

(समाप्त) ○○○

अन्त्य संकेत तथा सन्दर्भ – २७. मोहिंदर कौर गिल, आदि ग्रंथ, लोक रूप (दिल्ली: एम पी प्रकाशन, २००२),३०**२८.** ग्रंथ साहिब, पृष्ठ १३४ **२९.** Anthony De Mello, S.J., The Song of the Bird. (आनन्द गुजरात साहित्य प्रकाश, १९९६) पृ. ५ **३०.** T. Burraw Ancient and Modern Languages (A Cultural History of India) पृ. १६३ **३१.** पंजाबी साहित दा इतिहास, अध्याय ३ **३२.** स्वामी विवेकानन्द ने लाहौर में दिए गए अपने भाषण 'हिन्दू धर्म का सर्वमान्य आधार' (Common Basis of Hinduism) में कहा है, 'यह (पंजाब) भूमि आर्यावर्त के अन्तर्गत स्थित पुण्यतम भूमि है। यही ब्रह्मावर्त है... यही वह भूमि है, जहाँ से आत्मा का प्रखर प्रश्वास उठा था और इतिहास साक्षी है, जिसने आनेवाले समय में पूरे विश्व को आप्लावित कर दिया था। ... यहीं पर बाद में सौम्य नानक ने विश्व प्रेम का अपना संदेश दिया था। यहीं पर उनका विशाल हृदय उन्मुक्त हुआ और उन्होंने अपनी बाहों के आलिंगन में पूरा संसार ले लिया था, हिन्दुओं ही नहीं, मुसलमानों को भी''। (विवेकानन्द : सम्पूर्ण वाङ्मय (कोलकाता, अद्वैत आश्रम १-८, अद्वैत आश्रम १९८८, ९, १९९७) ३.३६६। मूल अंग्रेज़ी से लेखक द्वारा अनुवाद। **३३.** आदिग्रंथ, लोक रूप १ **३४.** गोपाल सिंह के अुसार पंजाबी भाषा के दो सौ पचास से अधिक मुहावरों और लोकोक्तियों को मूल रूप में ग्रंथसाहिब में देखा जा सकता है। (विस्तृत विवेचन के लिए देखें, डॉ. गोपाल सिंह, श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यिक विशेषता (नई दिल्ली: वर्ल्ड बुक सेन्टर, १९८७), अध्याय ७ **३५.** कबीर और गुरु नानक के जीवन और काव्य के परिचय के लिये देखें, प्राणनाथ पंकज : 'सुनो भाई साधो कहत कबीर' और 'सच की बाणी आखै गुरु नानक (नई दिल्ली : रूपा एंड कं., २००१) **३६.** कठोपनिषद् १.२.५. : अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। दन्द्रम्यमानाः पर्यन्ति मूढ़ाः अन्धैनैव नीयमान यथान्धाः।। **३७.** नारद-भक्तिसूत्र : तद्विस्मरणे परमव्याकुलता (१९) **३८.** ग्रंथसाहिब, पृष्ठ १४३-४४

नोट : १. सभी उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद लेखक द्वारा किया गया है। २. ग्रंथ साहिब के सभी उद्धरण मोतीलाल बनारसी द्वारा दो खंडों में प्रकाशित Winand M.Callewart द्वारा सम्पादित Sri Granth Sahib (1996) (देवनागरी) के प्रथम खंड से लिए गए हैं। सम्पादक के अनुसार यह पाठ शिरोमणि गुरद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा स्वीकृत पाठ के अनुसार है। * (Inde-European) भारतीय-यूरोपीय

कविता

जय सर्वेश्वरी मातु सारदे

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

जय सर्वेश्वरी मातु सारदे ।
सकल क्लेश-संकट निवार दे ।।
जय जगदम्ब जगत हितकारिणी,
सुर-नर-मुनि सबके दुखहारिणी ।
मातु जनि मुझको बिसार दे,
सकल क्लेश-संकट निवार दे ।।
पाप-ताप-संताप मोचिनी,
भवबाधा-माया विमोचिनि ।
मुझ पर भी दृष्टि पसार दे,
सकल क्लेश-संकट निवार दे ।।
दीनजनों की मूल रक्षिका,
अन्ध-तमिस्रा सर्व भक्षिका ।
मम उर के तम को बुहार दे,
सकल क्लेश-संकट निवार दे ।।
आर्तजनों पर स्नेह-वर्षिणी,
सकलशास्त्र-विद्या प्रदर्शिनी।
मुझको ज्ञानालोक-सार दे,
सकल क्लेश-संकट निवार दे ।।
तव करुणाश्रित यह जग सारा,
अम्बा तुम्हीं बस एक सहारा ।
भवसागर से मुझे तार दे,
सकल क्लेश-संकट निवार दे ।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

तेरहवाँ अध्याय (१३/२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १३वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को मिलाकर मनुष्य का सम्पूर्ण स्वरूप

भगवान कहते हैं, जो ज्ञात और अज्ञात; दोनों रूपों को जानता है, वही सही जानता है। जिसने अपने शरीर, मन, इन्द्रियों को भी जाना और इन सबके भीतर जो चैतन्य सत्ता है, उसको भी जाना, जिसे हम ईश्वर कहकर पुकारते हैं, ब्रह्म कहते हैं, उसको भी जाना, उसी का जानना सही है, पूर्ण है। अब यहाँ पर इस विषय का दार्शनिक सत्य उपस्थित होता है और हमारे सामने यह गुत्थी रखता है, जिसे सातवें अध्याय के चौथे और पाँचवें श्लोकों में भगवान ने कहा –

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।४।।

– हे अर्जुन ! यह जो आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है, जो पाँच महाभूत जिन्हें हम तेज, आकाश, वायु, पृथ्वी, जल कहते हैं और मन, बुद्धि अहंकार, ये सब मिलकर मेरी अपरा प्रकृति कहलाते हैं।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।५।।

– अपरा प्रकृति और परा प्रकृति दोनों भगवान की ही प्रकृतियाँ हैं। परा प्रकृति है – वही चैतन्य तत्त्व, वह जीवत्व जिसके कारण यह सारा संसार धारित है। भगवान कहते हैं, ये दोनों मेरे ही रूप हैं। मुझसे ही ये दोनों उत्पन्न हुए हैं और इन दोनों के ऊपर साक्षी के रूप में मैं ही हूँ। इन दोनों का परिचालन करता हूँ। मैं अपनी अपरा और परा प्रकृति के द्वारा इस संसार का सृजन करता हूँ, पालन करता हूँ, संहार करता हूँ। तो संसार का यह जो रूप दिखाई देता है, वह क्षेत्र कहलाया। अब अपने आपको लें। मैं तो संसार का केवल एक घटक हूँ। जब मैं अपने को देखता हूँ, तो मुझे यह शरीर दिखाई देता है, इन्द्रियाँ दिखाई देती हैं। अपनी इन्द्रियों के सहारे मैं विषयों को ग्रहण करता हूँ, संसार का ग्रहण करता हूँ। पाँच कर्मेन्द्रियों द्वारा उनके कार्य निर्वाह होते हैं। मन से मैं विचार करता हूँ। संकल्प और विकल्प मन में होते हैं, तो मानो मैं मन के संकल्प-विकल्प को देखता हूँ। बुद्धि निश्चय करती है। मैं अहंकार का भी अनुभव करता हूँ। भगवान कहते हैं, 'अर्जुन! तुम जिसका अनुभव करते हो, उसको क्षेत्र जानना। उन सब अनुभवों को मेरा कहनेवाला जो तत्त्व है, उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं। शरीर को भी वही जानता है, इन्द्रियों को भी वही जानता है। उसी प्रकार मन, बुद्धि को भी वही जानता है। अहंकार का अनुभव भी वही करता है। वही आत्मचैतन्य तत्त्व या जीव क्षेत्रज्ञ कहलाता है।

अब प्रश्न उठा कि मान लीजिए, हमने उस चैतन्य तत्त्व को स्वीकार नहीं किया, तो वह बात टिकेगी नहीं। क्योंकि शरीर तो इन्द्रियों का अनुभव कर नहीं सकता और न इन्द्रियाँ शरीर का अनुभव कर सकती हैं। जहाँ पर चैतन्य का अभाव होगा, वहाँ किसी प्रकार का अनुभव नहीं हो सकता। अतः

जिस चैतन्य के आधार पर हम कहते हैं कि 'यह मैं हूँ' अथवा 'यह मेरा शरीर है', उसे ही क्षेत्रज्ञ समझो। भगवान कहते हैं, यह जो चैतन्य है, यह मेरा ही प्रकाश है। इसे इस तरह समझें कि यहाँ पर दो विभिन्न श्रेणियाँ हो गईं। एक जड़ की और दूसरी चेतन की। एक श्रेणी हो गई अपरा प्रकृति की और दूसरी परा प्रकृति की। परा प्रकृति को क्षेत्रज्ञ कहते हैं, अपरा प्रकृति को क्षेत्र कहते हैं। क्षेत्रज्ञ अर्थात् किसान और क्षेत्र अर्थात् खेत। अपरा प्रकृति जो जड़ है, उसके भी दो विभाग हैं – एक स्थूल जड़ और दूसरा सूक्ष्म जड़। जो इन्द्रियों से दिखाई दे, वह स्थूल जड़ और जो इन्द्रियों से दिखाई तो नहीं देता, पर जिसे अनुमान या विचार के द्वारा हम जिसका ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह सूक्ष्म जड़ है। जैसे कि शरीर और पाँच कर्मेन्द्रियों को तो हम आँखों से देख लेते हैं, किन्तु पाँच ज्ञानेन्द्रियों को आँखों से तो नहीं देख पाते, पर उनका अनुभव करते हैं।

स्थूल शरीर और जीवात्मा को मिलाने का माध्यम मनोयन्त्र

थोड़ा-सा गूढ़ चिन्तन करें। आप आँख को तो देखते हैं, पर आँख को देखने की शक्ति को नहीं देख पाते। आँख की देखने की शक्ति ज्योति कम हो जाने पर आँख रहते हुए भी व्यक्ति वस्तु को सही-सही देख नहीं पाता। कान रहते हुए भी सुनने की शक्ति नष्ट हो जाने से बहरा हो जाता है। अर्थात् अपने अंग-प्रत्यंगों को बाहरी तौर पर तो हम देख सकते हैं, पर उनके भीतर की कार्य-संचालन करनेवाली शक्ति को हम नहीं देख सकते। उस शक्ति का अनुमान करते हैं, अनुभव करते हैं। तो जो हमें दिख जाता है, वह तो हुआ स्थूल-जड़ और जिन्हें हम विचार, अनुमान या अनुभव के द्वारा जानते हैं, उन्हें कहते हैं सूक्ष्म-जड़। सूक्ष्म-जड़ की श्रेणी में मन, बुद्धि, अहंकार इत्यादि आते हैं और वे सब मिलकर हमारे सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं। बाहरी दृश्यमान इन्द्रियाँ मिलकर स्थूल जड़ है। स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर है। परन्तु दोनों ही जड़ हैं। जिसे यहाँ पर क्षेत्रज्ञ कहा गया है, उसके भीतर आत्मतत्त्व या आत्मा विद्यमान रहता है।

अभी मैं जीवित हूँ। मुझमें चेतना है। मैं यदि कहूँ कि चेतना इसलिए है कि मेरे भीतर आत्मा है, तो आप कह सकते हैं कि आत्मा तो सर्वत्र है। सबमें सब जगह विद्यमान है। मेरे भीतर आत्मा है, ऐसा कहने का व्यवहार की दृष्टि से यह अर्थ हुआ कि 'मेरे अन्दर चेतन का प्रकाश है।' चेतन का वह प्रकाश यदि शरीर के भीतर न रहे, तो शरीर तो ज्यों का त्यों दिखाई देता रहेगा, पर उस शरीर के भीतर जो हलचल थी, जिसके कारण वह जीवित था, वह नहीं रहेगी और शरीर मुर्दा हो जाएगा। तब यदि कहें कि उस मुर्दे के भीतर आत्मा नहीं है, तो यह कहना तो ठीक नहीं है। क्योंकि आत्मा जब सर्वव्यापी है, तो वह मुर्दे के भीतर भी है, पत्थर के भीतर भी है, लकड़ी के भीतर भी है। तब फिर जीवन और मृत्यु का विवेचन कैसे होगा, इसे समझने का प्रयास करें। आत्मा सर्वत्र है और चैतन्य तथा प्राणवत्ता उसके गुण हैं। ये गुण तब प्रकट होते हैं, जब मन नामक यन्त्र उनके सामने आकर खड़ा होता है।

इसे ऐसे समझें कि चन्दन में सुगन्ध तो है, पर उसमें से हरदम सुगन्ध निकलती तो नहीं रहती। चन्दन की लकड़ी को यदि पानी में छोड़ दिया जाए, तो उसमें से दुर्गन्ध आने लगेगी। उसी दुर्गन्धपूर्ण लकड़ी को अगर थोड़ा-सा घिसें, तो उसमें से सुगन्ध निकलने लगती है। यह सुगन्ध लकड़ी में है। यह उस लकड़ी का गुण है; पर प्रकट तब होती है, जब हम उस लकड़ी को घिस देते हैं। उसी तरह चकमक पत्थर में आग है तो सही, पर प्रकट तब होती है, जब हम उस पत्थर को घिसते हैं। ठीक इसी तरह आत्मा के गुण-धर्म चैतन्य और प्राणवत्ता भी मनरूपी यन्त्र के सामने आने पर ही प्रकट होते हैं। इस स्थूल शरीर के भीतर जो सूक्ष्म शरीर है, उसे कहते हैं अन्तःकरण और उसी को बोलचाल की भाषा में कह देते हैं मन। मन सामने आ गया, तो आत्मा का चैतन्य धर्म प्रकट हो गया। हमें लगने लगता है कि हम जीवित हैं। ऐसा लगता है कि हमारे भीतर प्राण हैं। जो तरह-तरह की वनस्पतियाँ उगती हैं, सो जब हम बीज बोते हैं, तो वह पनपता है, पल्लवित होता है, ऊपर उठता है। उसमें भी मन नामक यन्त्र होने के कारण वह आत्मा के चैतन्यधर्म को प्रतिबिम्बित करता है। इसीलिए वनस्पति हमें प्राणवन्त मालूम पड़ती है। मन नामक इस यन्त्र की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। जैसे वनस्पति में यह अति मंद अर्थात् अपरिष्कृत श्रेणी का है, जिसमें कोई संस्कार नहीं है। मन जैसे-जैसे संस्कारित होता जाता है, वैसे-वैसे वह आत्मा के धर्म को अधिकाधिक प्रकट करता जाता है।

हम यदि एक दर्पण को लेकर देखें कि उस पर धूल की

मोटी परत जमी है, तो वह दर्पण प्रकाश को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकता। जैसे-जैसे हम उस धूल को पोंछते चलते हैं, वैसे-वैसे वह दर्पण अधिकाधिक प्रकाश को प्रतिबिम्बित करता चलता है और पूरी तरह स्वच्छ हो जाने पर वह प्रकाश को पूर्णतया प्रतिबिम्बित कर देता है। इसी प्रकार यह मन-यन्त्र कहीं-कहीं बहुत घने आवरण से ढँका रहता है, जैसे वनस्पति में। तब वह आत्मा के चैतन्य को बहुत कम मात्रा में प्रकाशित करता है, पर करता अवश्य है, इसीलिए वनस्पति चैतन्य मालूम पड़ती है। पत्थर के भीतर चैतन्य की प्रक्रिया ही नहीं होती, क्योंकि पत्थर के भीतर मन नामक यन्त्र ही नहीं है, जो उसमें आत्मा के चैतन्यधर्म को प्रतिबिम्बित करे। इसीलिए उसको हम जड़ कह देते हैं।

अभी तो हम चैतन्यवान कहलाते हैं क्योंकि हमारा मन आत्मा के चैतन्यधर्म को प्रतिबिम्बित कर रहा है। पर जब हम यह कहते हैं कि यह शरीर मर गया, तब उसका अर्थ होता है कि उसमें से सूक्ष्म शरीर निकलकर चला गया। जब मन छोड़कर चला गया, तो उसके रहने पर आत्मा का जो चैतन्य प्रतिबिम्बित होता था, वह नहीं रहा, इसीलिए शरीर मृत कहलाया।

आत्मा सर्वव्यापी

आत्मा की कभी अनुपस्थिति नहीं होती, उसका अभाव नहीं होता। आत्मा तो रहती ही है। वह सदा है, सर्वत्र है, सर्वव्यापक है। जहाँ पर मन नामक यन्त्र विद्यमान रहता है, वहाँ पर आत्मा की चैतन्यवत्ता का धर्म, प्राणवत्ता का धर्म प्रकट होता है और जिस समय मन हट जाता है, उस समय उसके द्वारा प्रकट होनेवाला धर्म भी लुप्त हो जाता है। अब जैसे पंखे में बिजली प्रवाहित हो रही है, तो वह घूमता दिखाई दे रहा है। उसका तार यदि कट जाए, तो उसका घूमना बन्द हो जाएगा। तब हम कहेंगे कि पंखा मर गया, बन्द हो गया। तार के कट जाने से उसके भीतर बिजली प्रकट नहीं हो पा रही है। पंखा भी है, बिजली भी है, पर दोनों को जोड़नेवाला तार कट गया, इसीलिए पंखा बन्द हो गया। यदि हम तार को जोड़ दें, तो पंखा फिर से चालू हो जाए।

यहाँ हम ऐसे कहते हैं कि जो जोड़नेवाला तत्त्व है, वह है मन। जो सूक्ष्म मन है, जड़ है। शरीर को आत्मा के चैतन्य से जोड़नेवाला मन ही है। जब यह मन शरीर से निकल गया, तो जोड़नेवाला तत्त्व समाप्त हो गया। आत्मा तो वहीं विद्यमान है, पर उन्हें जोड़नेवाला मन जब चला गया, तो शरीर मुर्दा हो गया। इसको कहा गया क्षेत्र, जिसमें मन भी शामिल है। क्षेत्र के दो विभाग हो गए। एक शरीर और दूसरा मन। एक है स्थूल और दूसरा सूक्ष्म।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते – ''हे कौन्तेय ! यह जो शरीर है, इसे क्षेत्र कह करके पुकारा गया है।'' तब प्रश्न उठा कि केवल शरीर को ही क्षेत्र कहा था, उसके अन्दर जो मन इत्यादि हैं, क्या उन्हें भी क्षेत्र कहा? इसी अध्याय में आगे चलकर भगवान समझाते हैं कि वे अन्त:करण आदि भी सब क्षेत्र के ही अन्तर्गत आते हैं। क्षेत्र का एक विभाग स्थूल जड़ शरीर है और दूसरा विभाग सूक्ष्म जड़ अन्त:करण आदि है। अन्त:करण जब निकल जाता है, तो हम कहते हैं कि जीव निकल गया। जीव के निकलने का अर्थ है कि सूक्ष्म शरीर निकल गया। आत्मा तो वहीं विद्यमान रहती है। सूक्ष्म शरीर चाहे दूसरे लोक में चला जाए, चाहे दूसरा शरीर धारण कर ले, आत्मा नष्ट नहीं होती। उसका कहीं आना-जाना नहीं होता। आत्मा तो सर्वव्यापी है। वह मुर्दे में भी है, पाषाण में भी है। जड़-चेतन सबके भीतर वही आत्मतत्त्व भरा हुआ है।

विभिन्न क्षेत्रों में एक ही क्षेत्रज्ञ का वास

हमने इतनी देर यहाँ मृत्यु के प्रसंग में जो विचार किया, उसी विषय को आगे बढ़ाते हुए भगवान कहते हैं कि एक स्थूल शरीर से निकलकर जानेवाला सूक्ष्म शरीर जाकर फिर किसी गर्भ में प्रवेश करेगा। एक नया शरीर धारण करेगा। उस जगह आत्मा तो पहले से मौजूद है ही और ज्योंही यह सूक्ष्म शरीर या अन्त:करण या मन आकर आत्मा के सम्मुख खड़ा हुआ कि बस आत्मा की प्राणवत्ता प्रकट हो जाती है। उसमें प्राण का स्पन्दन शुरु हुआ, चेतना आई। वह मन मानो उस आत्मा को घेर-सा लेता है। जैसे हम भिन्न-भिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों को रखा हुआ देखते हैं, उन बर्तनों ने आकाश को घेर लिया। लोटा, थाली, गिलास आदि ने अलग-अलग आकाश को घेर लिया। ठीक उसी प्रकार कहते हैं, मन ने आत्मा को घेर लिया। मन की उपाधि ने आत्मा को सीमित कर लिया। आत्मा कभी सीमित नहीं होती। आकाश कभी सीमित नहीं होता।

शेष भाग पृष्ठ ५७० पर

साधुओं के पावन प्रसंग (७१)

स्वामी निखिलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

द्वितीय स्मृति : संन्यास-जीवन में संतुलीत जीवन कैसे व्यतीत किया जाये? इस विषय में स्वामी सारदानन्द जी ने उनको क्या कहा था, उसको निखिलानन्दजी लिखते हैं –

कर्म के प्रति मेरी तीव्र इच्छा थी। एक दिन स्वामी सारदानन्द जी ने कहा, ''कर्म करना अच्छा है, किन्तु कितना करें, उसकी कुछ शर्तें हैं। स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए और सहकर्मियों के साथ मिलकर चलना भी होता है। सोचो, यदि तुम्हारा शरीर का एक अंग नष्ट हो जाता है, तो उस समय कार्य करना बहुत कठिन होगा। इसीलिए पढ़ाई-लिखाई का भी अभ्यास रखने के लिए कहता हूँ। किन्तु वह भी पर्याप्त नहीं है। सोचो कि कोई अन्धा हो गया, इसीलिए ध्यान का अभ्यास करना अच्छा है। जब कार्य या पढ़ाई-लिखाई करना सम्भव नहीं होगा, उस समय ध्यान कर सकोगे।''

स्वामी निखिलानन्द जी महाराज

तृतीय स्मृति : हमलोग बहुत समय शास्त्र की बातें और श्रीरामकृष्ण की बातों में सामंजस्य नहीं खोज पाते हैं। अन्तिम जन्म को लेकर बहुत विभ्रान्तियाँ हैं। निखिलानन्द ने स्वामी शिवानन्द जी की स्मृति में उस सम्बन्ध में एक अपूर्व समाधान का उल्लेख किया है –

महापुरुष महाराज से कभी भी किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक विषय पर मैंने प्रश्न किया है, ऐसा स्मरण नहीं आता। वे स्वयं को विद्वान या दार्शनिक कहकर प्रचार नहीं करते थे। वे जो कुछ भक्तों को कहते या जो कुछ उपदेश देते, वे सभी उनके स्वयं के अनुभव से स्फूर्त होते थे। उनकी भाषा सहज और सरल थी। इसके साथ ही उनका अखण्ड विश्वास था कि वे श्रीरामकृष्ण देव के हाथ के यन्त्र मात्र हैं, उनकी इच्छा से ही जीवन का सभी कार्य, सभी चिन्तन तथा वाक्य नियन्त्रित हैं। अहंबुद्धि उनमें लेशमात्र भी नहीं थी। एक दिन इस बहु-विवादित प्रश्न को उनसे पूछा था, ''श्रीरामकृष्ण देव के आश्रय में जो आया है, उसका यही अन्तिम जन्म है, क्या यह बात सत्य है?'' उत्तर में उन्होंने कहा था कि सत्य है, उनका भी यही विश्वास है।

मैंने तर्क करते हुए कहा था कि शास्त्र के आदेशानुसार निर्वासना नहीं होने से पुनर्जन्म नहीं छूटता। और निर्विकल्प समाधि से प्रत्यक्ष ब्रह्म-दर्शन नहीं होने से निर्वासना होना भी सम्भव नहीं होता। तब यह सत्य कैसे हो सकता है?

महापुरुष महाराज ने तब कहा था, ''देखो, मैं विद्वान नहीं हूँ तथा शास्त्र भी नहीं जानता। किन्तु पुनर्जन्म का क्या कारण है बोलो तो? अपूर्ण वासना ही उसका कारण नहीं है क्या?''

मैंने कहा था, ''हाँ, ऐसा ही लगता है।''

''कल्पना करो, तुम्हारे मृत्यु के समय यदि श्रीरामकृष्ण देव तुम्हारे समय उपस्थित हुए हैं तथा प्रश्न किया कि तुम्हारी कोई अपूर्ण वासना रह गयी है क्या, जिसके लिए पुन: संसार में जन्म ग्रहण करना चाहते हो। उस समय तुम उनको क्या कहोगे?''

''कहूँगा, मेरी कोई ऐसी अपूर्ण वासना नहीं है, जिसके लिए संसार में पुन: जन्म ग्रहण करूँ।''

''तब तो यही तुम्हारा अन्तिम जन्म हुआ। मृत्यु-समय

उनका दर्शन होने से यह निर्वासना का भाव प्रभु की कृपा से प्राप्त होता है।'' यह उत्तर दिया था महापुरुष महाराज ने।

स्वामी निखिलानन्द जी रामकृष्ण संघ में बौद्धिक क्षेत्र में एक चिन्ह छोड़ गये है। उनका जीवन सार्थक हुआ।

परवर्तीकाल में स्वामी निखिलानन्द जी अपनी लेखनी तथा बातचीत के द्वारा स्मृति बताया करते थे। श्रीमाँ से दीक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :

श्रीमाँ शिष्य नहीं खोजती थीं। उन्होंने एक बार कहा था, ''जो लोग मेरे पास आना चाहते हैं, वे लोग अपना जगत का बन्धन तोड़ कर आयें। मैं उनको स्वयं से आने के लिए नहीं कहूँगी।'' वे संसार से अज्ञात निर्जन जीवन-यापन करती थीं। बहुत कम लोग ही उनके विषय में जानते थे। १९१६ ई. में बेलूड़ मठ में मैंने स्वामी प्रेमानन्द जी से ठाकुर के किसी विशिष्ट शिष्य के पास से दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने मुझे श्रीमाँ के पास से दीक्षा लेने के लिए कहा। मैंने कहा, ''श्रीमाँ कौन?'' उन्होंने मेरी अज्ञानता के लिए बहुत डाँटा।

तदुपरान्त स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज के कथनानुसार उन्होंने जयरामवाटी जाकर श्रीमाँ से दीक्षा ग्रहण की। न्यूयार्क में भोजन की मेज पर उन्होंने कहा, ''जयरामवाटी में मेरे भोजन करते समय श्रीमाँ सामने बैठकर बहुत स्नेह से भोजन कराती थीं तथा मुझे भोजन करते हुए देखती थीं। जिस दिन मैं जयरामवाटी से आया, उस दिन वे मेरे साथ पैदल चलते हुए गाँव के अन्त तक आकर सजल नेत्रों से विदाई की थीं। यह स्मृति कभी भी विस्मृत नहीं हो सकती। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५६८ का शेष भाग

जैसे अभी तक केवल मिट्टी थी। उसका कोई आकार नहीं था। कुम्हार ने उसका बर्तन बना दिया। उस बर्तन के भीतर थोड़ा आकाश बन्द हो गया, तो क्या उस बर्तन ने आकाश को घेर लिया? बोलचाल की भाषा में हम भले ही ऐसा कह लें, पर वस्तुत: यह सत्य नहीं है। बर्तन आकाश को घेर नहीं सकता। आकाश तो जैसा था, वैसा ही है। बर्तन जब बना नहीं था, तब आकाश वैसा ही था। बर्तन जब बन गया, तब भी आकाश वैसा ही है और बर्तन जब फूट जाता है, तब भी आकाश वैसा ही रहता है। आकाश लिप्त नहीं होता। उसको बर्तन घेर नहीं पाता।

इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि मन और शरीर ने आत्मा को घेर लिया है, तो वह सम्भव नहीं है। मिट्टी के विभिन्न बर्तनों के लिए जब हम यह कहते हैं कि उन्होंने आकाश को घेर लिया, तो उससे आकाश के विभिन्न रूप पैदा हो जाते हैं। इसी तरह शरीर और मन के घेर लेने पर आत्मा के अनगिनत रूप भासते हैं। जब सबके भीतर वही आत्मतत्त्व, वही भगवान बैठे हैं, तब इतनी भिन्नता क्यों दिखाई देती है, यह आप पूछ सकते हैं। अन्त:करण या मन की भिन्नता के कारण आत्मा के रूप अलग-अलग लगते हैं। आपके अन्त:करण के संस्कार अलग, मेरे अन्त:करण के संस्कार अलग। इसी से लगता है कि आत्मा अलग है और मेरी आत्मा अलग है। परन्तु आत्मा अलग नहीं है। मन के संस्कार अलग-अलग हैं। सबके अन्त:करण अलग हैं। शरीर अलग हैं। ये जो जड़ भाग हैं, वे अलग-अलग हैं। खेत अलग-अलग हैं, पर खेतों का जो किसान है, वह अलग नहीं है। यह आत्मतत्त्व अलग नहीं है। इसलिये भगवान ने यहाँ कहा, इदं शरीरं कौन्तेय...। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से विवेक और विचार करने के लिए कहते हैं कि यह जो तुम्हारा शरीर दिखाई देता है, इसी को क्षेत्र कहा गया। गीता के कुछ दूसरे संस्करणों के तेरहवें अध्याय में एक श्लोक आता है, जिसमें अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया है, ''हे केशव ! मैं प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान, ज्ञेय इन सबको जानना चाहता हूँ। आप कृपा कर इनके सम्बन्ध में मुझे बताइए। वह श्लोक है –

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं हि केशव।।

गीता के जिन संस्करणों में अर्जुन का यह प्रश्न नहीं है, उनमें तेरहवें अध्याय के भगवान के कथन की संगति बैठाने के लिए हम ऐसा समझें कि ग्यारहवें अध्याय में भगवान ने जो भक्तियोग की चर्चा की और यह भी कहा कि उन्हें तत्त्व से जाना जा सकता है। उसी की व्याख्या करते हुए कहते हैं ...इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। आत्मतत्त्ववेत्ता मनीषियों के अनुसार यह शरीर क्षेत्र (खेत) है और उसे जाननेवाला क्षेत्रज्ञ (किसान) स्वयं भगवान है। **(क्रमशः)**

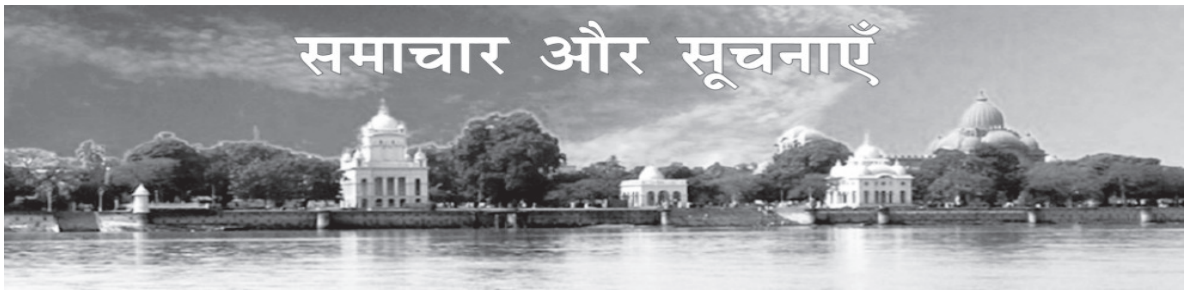

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद् का वार्षिक सम्मेलन हुआ

२८ और २९, सितम्बर, २०२४ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद का वार्षिक सम्मेलन **श्रीरामकृष्ण सारदा निकेतन, लेपा, जिला – खरगोन, मध्य प्रदेश** में सम्पन्न हुआ। २८ सितम्बर को प्रातः ८ से ९ बजे तक प्रतिनिधियों का पंजीकरण हुआ। इसके बाद ९.१५ बजे सभी संन्यासियों और प्रतिनिधियों की उपस्थिति में परिषद का

ध्वजारोहण हुआ। संन्यासियों के द्वारा दीप-प्रज्वलन, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी के पावन चित्रों पर माल्यार्पण, पूष्पार्पण और त्रिदेवों की आरती हुई। मंचस्थ अतिथियों का स्वागत हुआ। भावप्रचार परिषद के संयोजक स्वामी तन्मयानन्द जी द्वारा सामुहिक रूप से संकल्प मन्त्र का पाठ और स्वामी सुदीप्तानन्द के द्वारा भजन प्रस्तुत किया गया। श्रीरामकृष्ण सारदा निकेतन की सचिव प्रव्राजिका विशुद्धानन्दा माताजी ने समस्त आगत अतिथियों का स्वागत किया। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ हुआ। परिषद के संयोजक स्वामी तन्मयानन्द जी ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् श्री मनोज यादव जी के द्वारा पिछली बैठक की कार्यवाही का वाचन और अनुमोदन हुआ। उसके बाद परिषद के केन्द्रों से आये हुये प्रतिनिधियों ने अपने आश्रम का छः मास का कार्य-विवरण प्रस्तुत किया। द्वितीय सत्र में शेष विवरण प्रस्तुति के बाद आश्रमों की समस्याओं पर समाधान हेतु परिषद के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, पर्यवेक्षक और अन्य संन्यासियों ने व्याख्यान दिये। शाम को नर्मदा तट पर स्थित श्रीरामकृष्ण सारदा निकेतन, भटियाण केन्द्र में एक सभा हुई, जिसमें रामकृष्ण मठ, रींवा के अध्यक्ष स्वामी निर्विकल्पानन्द और भावप्रचार परिषद के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी ने व्याख्यान दिये। सन्ध्या ७.३० बजे श्रीरामकृष्ण सारदा निकेतन के बच्चों ने सभागार में सुन्दर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

दूसरे दिन भक्त-सम्मेलन था। इसमें स्वामी सेवाव्रतानन्द, स्वामी सुप्रदीप्तानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी नित्यज्ञानानन्द, बेलूड़ मठ के प्रतिनिधि स्वामी इष्टमयानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी निर्विकल्पानन्द और स्वामी व्याप्तानन्द जी ने विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिये। अन्त में परिषद के सह-संयोजक और लेपा के प्रकल्प समन्वयक श्री दिग्विजय सिंह चौहान के धन्यवाद ज्ञापन और 'श्रीरामकृष्ण-शरणम्' भजन से कार्यक्रम सुसम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम में १५ आश्रमों के २४ प्रतिनिधियों और ११० भक्तों ने भाग लिया।

स्वामी विवेकानन्द जन्मभूमि भवन, कोलकाता में राष्ट्रीय स्तरीय दो पाठ-आवृत्ति प्रतियोगितायें ऑनलाईन और ऑफलाइन आयोजित हुईं, जिसमें भारत के विभिन्न राज्यों से २२७५ छात्रों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर में ३१ अगस्त, २०२४ को युवा-सम्मेलन हुआ, जिसमें विभिन्न स्थानीय स्कूल-कालेजों के १२० छात्रों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, गुरुग्राम ने २७ जुलाई से २३ अगस्त, २०२४ तक देश के विभिन्न भागों में मूल्योन्मुखी शिक्षक-कार्यशाला का आयोजन किया, जिसमें कुल १७५४ शिक्षकों ने भाग लिया।

वार्षिक अनुक्रमणिका

'विवेक-ज्योति' में वर्ष २०२४ ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

आत्मानन्द स्वामी – गीतातत्त्व चिन्तन (१२/५) ३७, (१२/६) ७६, (१२/७) १३३, (१२/८) १७४, (१२/९) २३४, (१२/१०) २७९, (१२/११) ३२७, (१२/१२) ३७२, (१२/१३) ४२४, (१२/१४) ४७३, (१३/१) ५२०, (१३/२), ५६६

आत्मश्रद्धानन्द स्वामी – शिक्षा के दो पक्ष – प्रतिभा-पोषण और चरित्र-निर्माण ४१४,

अलोकानन्द स्वामी – भारत में रामकृष्ण संघ का प्रथम मन्दिर १०५, गाजीपुर की अध्यात्म-त्रिवेणी में श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और पवहारी बाबा ३९३, नवदुर्गा प्रकीर्तिता: ४४१,

ईशानन्द स्वामी – देवी जगद्धात्री का स्वरूप ४८९, जगद्धात्रीरूपिणी श्रीमाँ सारदा ५४३,

उपाध्याय, पं. रामकिंकर – रामराज्य का स्वरूप (१०/३) १३, (१०/४) ६२, रामगीता (१) ११४, (२) १६९, (३) २१०, (४) २५८, (५) ३०४, (२/१) ३५१, (२/२) ४००, (२/३) ४५५, (२/४) ४९६, (३/१) ५५५,

खुदशाह संजीव – मनखे-मनखे एक समान के संदेशक बाबा गुरु घासीदास ५५९,

गुप्ता राजकुमार – मित्रों के मित्र श्रीराम १५६, मन्दिर का इतिहास २१३, कलियुग के दोष एवं उनसे बचने के उपाय ३२५, भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या का लौकिक और पारलौकिक महत्त्व ३४८,

गुणदानन्द स्वामी – (विवेकानन्द युवा प्रांगण) क्या तुम्हारी कोई प्रतिमा है? २४, युवाओ, कभी निराश मत होना! ७४, नेतृत्व में सशक्त महिलाएँ १२३, श्रीराम और युवा १६७, युवा मन पर भोजन का प्रभाव २२०, विक्षुब्ध मन पर अच्छी आदतों एवं सद्गुणों का प्रभाव २६५, जो जैसा बोएगा, वैसा ही काटेगा ३१८, कमिंग विथ ब्रदर – दुर्गावती ३६२, नशे के सेवन से बचें : युवाओं के लिये एक मार्गदर्शिका ४०७, महान व्यक्तित्व की संगति का प्रभाव ४६३, जीवन नौका की पथप्रदर्शिका : बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता ५०५, जीवन को गौरवशाली बनाने में प्रेरणा की आवश्यकता ५४९,

गुमाश्ता डॉ. राघवेन्द्र – नमामि देवि नर्मदे ६५,

घोष रीता – नारी शिक्षा में श्रीमाँ सारदा का योगदान २७, भारत के मन्दिर और उनकी संरचना ३०७,

घोष शान्ति कुमार – वाराणसी के गोपाल लाल विला में विवेकानन्द : कुछ अज्ञात तथ्य ३५९,

चटर्जी अर्पिता डॉ. – भारतीय वास्तुकला में मन्दिरों का महत्त्व ४०३,

चन्द्राकर राधिका – गुरुकुल परम्परा का पुनर्जागरण ४०९,

चेतनानन्द स्वामी – सबकी श्रीमाँ सारदा १६, ६९, १२५, १७२, २१६, २६८, साधुओं के पावन प्रसंग (६०) ४३, (६१) ९२, (६२) १३९, (६३) १८७, (६४) २३६, (६५) २८२, (६६) ३३०, (६७) ३८० (६८) ४२७, (६९) ४७६, (७०) ५२३, (७१) ५६९,

चूड़ीवाल अरुण – तेन त्यक्तेन भुंजीथा ४२०,

चौबे उत्कर्ष – हिन्दी साहित्याकाश में प्रखर सूर्य श्रीराम १६०, २२८, दुर्गानाम की अद्‌भुत महिमा ४५८, शास्त्रों में लोक महापर्व छठ ५०१,

चौबे जगदीश्वरी – भाई दूज ५१८,

झा भवनाथ पं. – तन्त्रोपनिषदों में शक्ति की अवधारणा ४७०,

त्रिपुरहरानन्द स्वामी – आनन्द-यात्रा २२२,

दयापूर्णानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में संस्कृत एवं संस्कृति ३५६,

द्विवेदी श्रीधर प्रसाद – लोक संस्कृति में श्रीराम २५५,

द्विवेदी हिमांशु डॉ. – सोशल मीडिया की प्रवृत्ति से युवाओं को बचाना आवश्यक है ३७५,

निखिलात्मानन्द स्वामी – श्रीराम और श्रीरामकृष्ण १२०, १५३, २०१, २७५, ३२१, ३७६, ४२१,

पररूपानन्द स्वामी – रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि २७३, शक्तिरूपिणी मातृरूपिणी श्रीमाँ सारदा ५३७,

पाण्डेय साकेत बिहारी – राष्ट्र-निर्माण में मन्दिरों का महत्त्व ३६४,

पूर्णानन्द स्वामी – श्रीरामकृष्ण गीता (३०) ३२, (३१) ७८, (३२) १३२, (३३) १७८, (३४) २१५, (३५) २६१, (३६) ३२०, (३७) ३५०, (३८) ४१३, (३९) ४६९, (४०) ५०७, (४१) ५५८,

पंकज ए.पी.एन. – पंजाबी साहित्यिक परम्परा में 'आदिग्रन्थ' का स्थान ५१०, ५६१,

प्रपत्त्यानन्द, स्वामी – (सम्पादकीय) दिव्य लीलाकारिणी माँ! ७, सरस्वती के उपासक विवेकानन्द ५५, जितने मत उतने पथ : श्रीरामकृष्ण की उद्घोषणा १०३, शौर्यशाली और धैर्यशाली श्रीराम १५१, स्वामी विवेकानन्द-मन्दिर, बेलूड़ मठ का शताब्दी वर्ष : ऐतिहासिक स्मृति १९९, श्रीरामकृष्ण द्वारा अनुमोदित नारदीय भक्ति २४७, २९५, गर्व से कहो, मैं भारतवासी हूँ : विवेकानन्द ३४३, शिक्षा स्वामी विवेकानन्द के परिप्रेक्ष्य में ३९१, जगत्तारिणी त्राहि दुर्गे ४३९, लोक पर्वों में आध्यात्मिकता ४८७, श्रीमाँ सारदा की व्यस्त दिनचर्या और भगवन्नाम-जप ५३५,

ब्रह्मचारी नरोत्तमचैतन्य – नि:स्वार्थता : साध्य और साधन विमर्श २६२,

ब्रह्मचारी डॉ. विद्यानन्द – स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का आकस्मिक मिलन ८८,

भट्टाचार्य चम्पा – मूर्त-महेश्वर : स्वामी विवेकानन्द ३५, अप्रतिम विवेकानन्द ८२,

मुखोपाध्याय नवनीहरण – विवेकानन्द और युवा आन्दोलन ७९, भगवान जगन्नाथ और उनकी ब्रह्मवस्तु ३००,

मुखोपाध्याय अन्वय (डॉ.) – मन्दिर का आध्यात्मिक रहस्य २४९,

मिश्र युगल किशोर (प्रो.) – भारतीय चिन्तन में शक्तितत्त्व ५०८,

विवेकानन्द स्वामी – भारत के पुनरुत्थान के उपाय ६, निर्वाणलाभ यहीं और अभी हो सकता है ५४, आपस में झगड़े की कोई आवश्यकता नहीं १०२, हिन्दू धर्म में राष्ट्रीय भाव है आध्यात्मिकता १५०, श्रीरामकृष्ण यहाँ (बेलूड़ मठ में) दीर्घ काल तक निवास करेंगे १९८, सभी शरीरों में मानव शरीर ही श्रेष्ठतम है २४६, महापुरुषों के सत्संग से सम्पूर्ण जीवन बदल जायेगा २९४, विचारों के सामंजस्य और अनासक्ति के प्रतीक थे श्रीकृष्ण ३४२, शिक्षा तो तुम स्वयं ही अपने को दोगे ३९०, यह वही देश है जहाँ सीता-सावित्री का जन्म हुआ था ४३८, पवित्रता ही स्त्री और पुरुष का सर्वप्रथम धर्म है ४८६ हजारों गौरी-माताओं की आवश्यकता है ५३४,

शंकराचार्य श्री – प्रश्नोपनिषद् (४३) २६, (४४) ८७, (४५) १३६, (४६) १६६, (४७) २२७, (४८) २६४, (४९) ३१६, (५०) ३७१, (५१) ३९९, (५२) ४६५, (५३) ५००, (५४) ५५४,

शर्मा डॉ.के.डी. – श्रीमद्भगवगीता की प्रत्येक काल में प्रासंगिकता ५५१,

शर्मा प्रदीप कुमार डॉ. – छत्तीसगढ़ का शिवरीनारायण मन्दिर ५१६,

शर्मा सत्येन्दु डॉ. – श्रीकृष्ण का शौर्य ३४५, भगवान्निवासो मन्दिरम् ४९२,

शर्मा रंजना डॉ. – गाँधी के श्रीराम १८१,

शास्त्री यज्ञेश्वर स. प्रो.(डॉ.) – देवी-तत्त्व ४५१,

शुक्ला अनिता श्रीमती – सामाजिक विकास में मन्दिरों की भूमिका ५४६

सत्यरूपानन्द, स्वामी – इष्ट को मूर्ति नहीं, जाग्रत समझो २३, भगवान के लिए कुछ समय निकालो ६८, शान्ति पाने का उपाय १११, दूसरों का हित पहले सोचो १५८, आनन्द ईश्वर के नाम से आता है २०५, जीवन में सहजता कैसे आयेगी २५४, हमारा सब कुछ ठाकुर का है, अपना कुछ भी नहीं ३१४, सत्संग से नि:संगता आती है ३६१, भगवान की योजना से विवेकानन्द शिकागो में गये ४११, स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण से क्या सीखा? ४४८, इच्छा छोड़ो, दिव्य हो जाओगे ४९९, सत्यवादी ही नहीं, सत्य में प्रतिष्ठित भी हों ५४१,

सत्येशानन्द स्वामी – रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, यादाद्री भुवनगिरि मठ : आन्तरिक जीवन का स्वर्ग १७९,

संवित् सोमगिरि स्वामी – शिव-तत्त्व : एक विमर्श ११२,

सान्याल अरुपम डॉ. – संस्कृत साहित्य में श्रीराम १७६, शिल्पशास्त्र में महिषासुरमर्दिनी दुर्गा ४६६,

सेराड़ी हरेन्द्र – वात्सल्य की त्रिमूर्ति श्रीमाँ सारदा ४०,

साहा मोहनलाल – विवेकानन्द-स्मृति २५२,

सिंह जया डॉ. – महात्मा बुद्ध का जीवन और सन्देश २०६, गुरु की ऊर्जा सूर्य-सी २९८,

सिंह श्रीमती मिताली – (बच्चों का आंगन) आत्मशक्ति का बोध २१, बच्चों, परीक्षा से परेशान मत हो! ६७, आत्म-संघर्ष ११७, हनुमानजी से सीखें १५९, बच्चों को मन्दिर क्यों जाना चाहिए? २०९, स्वस्थ तन में मन का योगदान २५७, गुरु-शिष्य परम्परा : शिक्षा-ग्रहण करने की पवित्र परम्परा ३१५, राय बाघिनी रानी भवशंकरी ३५५, अनमोल शिक्षक ३९८, दुर्गा पूजा का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तत्व ४५४, छोटा वैज्ञानिक आर्यन ४९५, भगवद्गीता से मनु का जीवन सफल हुआ ५४५,

सिंह श्याम (डॉ.) – आधुनिक जीवन में योग की भूमिका २७३,

सुवीरानन्द स्वामी – सुभाष के छात्र-जीवन में स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव ९, ५८,

सर्वप्रियानन्द स्वामी – राजपुत्र का भ्रम १९०,

सुहितानन्द, स्वामी – सारगाछी की स्मृतियाँ (१३४) ३३, (१३५) ८०, (१३६) १३७, (१३७) १८५, (१३८) २३१,

कविता-भजन-स्तोत्र

कुमार अनिल 'फतेहपुरी' (डॉ.) – वरदान दे माँ सारदे २६७, श्रीरामकृष्णार्चनम् ३२९, विवेकानन्द वन्दना ३५४, जय जननी जगदम्ब भवानी ४५०, महाकाली स्तोत्रम् ५०७, जय सर्वेश्वरी मातु सारदे ५६५,

गौड़ रामकुमार – श्रीमाँ सारदा-वन्दना २२, दक्षिणेश्वर लीला-चिन्तन ३१७,

चौबे ओ.पी. – कान्हा अब तो दरशन दे दो ४१३,

तिवारी आनन्द 'पौराणिक' – जय जय विवेकानन्द ४२०

द्विवेदी श्रीधर प्रसाद – रमते हरि भारत के मन में २१५, व्रज की माधुरी २५४, वेणु बजी मनमोहन की ३५४, छाई है छठ की छटा ५१५,

त्रिपाठी भानुदत्त 'मधुरेश' – राम भजो दिन रैन १७८,

मनराल मोहन सिंह – रामकृष्ण बोलो १३६,

परमार बाबूलाल – हे भगवान ! तू दया का सागर है ३२,

रावण श्री – श्रीशिवताण्डवस्तोत्रम् ११८,

वर्मा ओमप्रकाश डॉ. – रूप छिपाकर तुम माँ आयी २२, जयतु विवेकानन्द महाप्रभु ६६, हिय में बसते हैं श्रीराम १६५, रामकृष्ण जगदीश्वर प्रभुवर २१५, तुम ही प्रभु सर्वस्व हमारे २६७, करूँ वन्दना गुरु की निसदिन ३१३, गाता हूँ मैं भारत-गान ३५४, जयतु विवेकानन्द विश्वगुरु ४१३, जय माँ दुर्गे दुर्गतिनाशिनी ४५०, काली काली नित्य भजूँ मैं ५०७, परमा प्रकृति सारदा देवी ५५८,

श्रीवास्तव विजय कुमार – धन्य-धन्य अध्यात्म शिरोमणि १३२, तब ही सुखमय होगा जीवन ३५४,

शर्मा विष्णु 'कुमार' – युवकों ने ही क्रान्ति मचाई २२,

शर्मा सत्येन्दु डॉ. – महादेवस्तवनम् २५,

सिन्हा सदाराम 'स्नेही' – स्वामी विवेकानन्द ६६, जोड़ हृदय का तार ४७२,

अन्य संकलन

पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) – ५, ५३, १०१, १४९, १९७, २४५, २९३, ३४१, ३४२, ३८९, ४३७, ४८५, ५३३, ५७२

लेख एवं प्रसंग – रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सोलहवें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज ब्रह्मलीन हुये २४३,

स्तोत्र-भजनादि संकलन – श्रीसारदा-स्तोत्रम् ५, स्वामी विवेकानन्द-स्तोत्रम् ५३, श्रीरामकृष्ण प्रातः स्मरण-स्तोत्रम् १०१, श्रीरामचन्द्र-ध्यानम् १४९, बुद्धदेव-स्तोत्रम् १९७, श्रीरामकृष्ण-स्तोत्रम् २४५, गुरुणां गुरुं भावये रामकृष्णम् २९३, श्रीकृष्ण-वन्दना ३४१, विवेकानन्द-स्तोत्रम् ३८९, दुर्गा वन्दना ४३७, काली-स्तुतिः ४८५, माँ सारदा स्तुतिः ५३३,

समाचार और सूचनाएँ – ४६, ९४, १४१, १९१, २३८, २८५, ३३४, ३८२, ४३७, ४७८, ५२५, ५७१,

वार्षिक अनुक्रमणिका (२०२४) – ५७४